योगविद्या

वर्ष 14 अंक 7
जुलाई 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: गुरु भक्ति योग

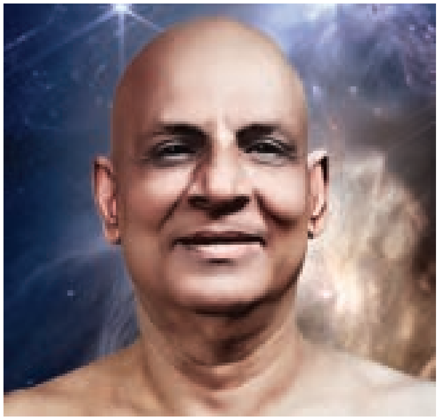

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

ध्यान

मन को एक लक्ष्य पर स्थिर करना एकाग्रता है। योग-दर्शन में इसे धारणा की संज्ञा दी गयी है। मानसिक प्रवृत्तियों को केवल एक पदार्थ पर स्थिर और प्रतिष्ठापित करना धारणा है। जिस विधि से मन और मन-सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ एकाग्र कर दी जाती हैं – उनमें चंचलता नहीं रहती, विक्षेप नहीं रहता – उस विधि को धारणा कहा जाता है।

धारणा के बाद ध्यान का अवतरण होता है। ध्यान में केवल एक ही विचार का प्रवाह तैलधारावत् रहता है। विचारों की एकसार गति को ध्यान कहते हैं।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

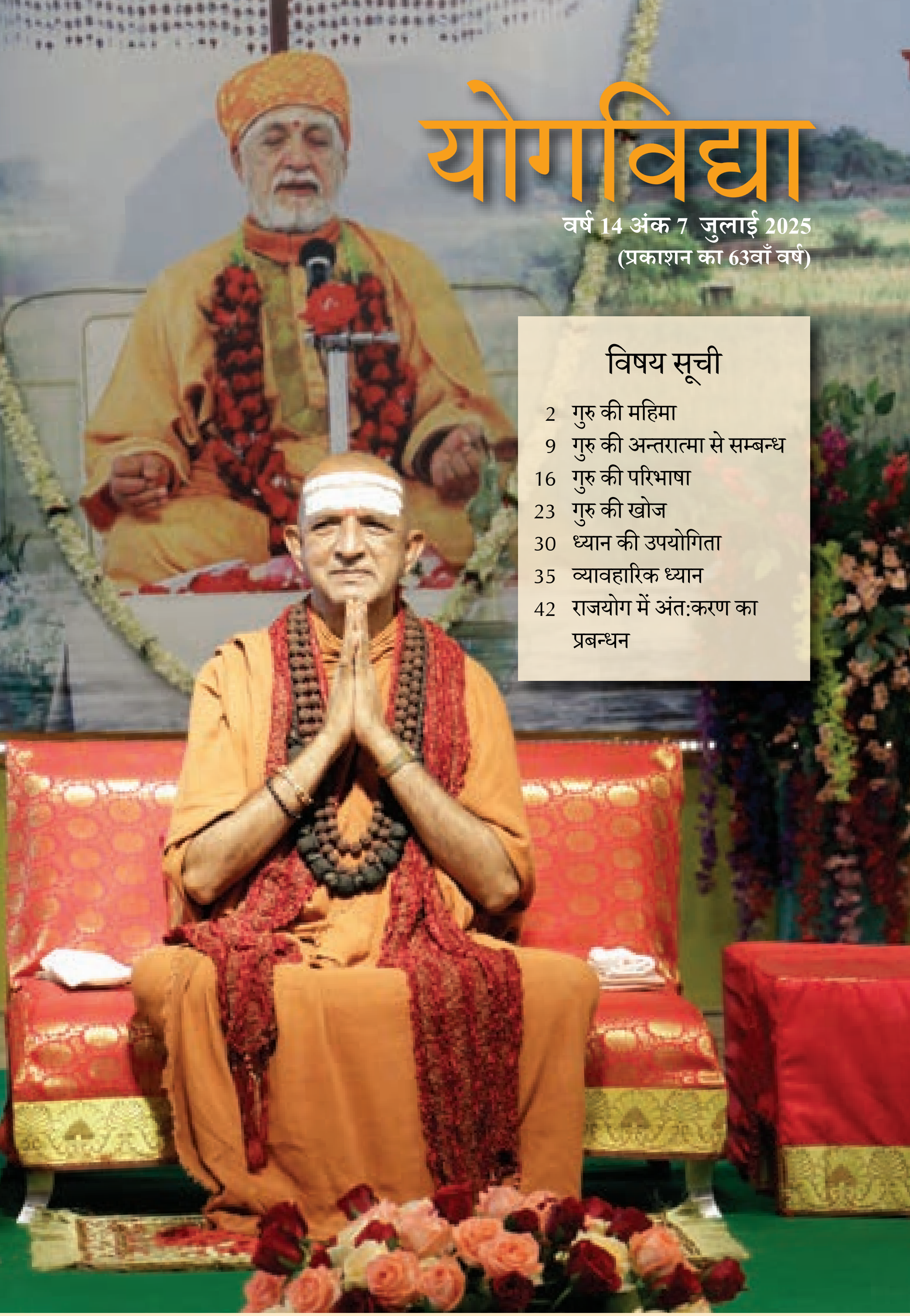

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 7 जुलाई 2025
(प्रकाशन का 63वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 गुरु की महिमा
9 गुरु की अन्तरात्मा से सम्बन्ध
16 गुरु की परिभाषा
23 गुरु की खोज
30 ध्यान की उपयोगिता
35 व्यावहारिक ध्यान
42 राजयोग में अंत:करण का प्रबन्धन

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

गुरु की महिमा

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ऋषि, मुनि या ब्रह्मनिष्ठ उन्हें कहा जाता है, जो सत्य का बौद्धिक विश्लेषण नहीं, बल्कि अपनी अन्तर्दृष्टि से प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्ति ही गुरु होते हैं, जो जनसाधारण को सत्य का ज्ञान देते और उनमें ईश्वरीय चेतना का संचार करते हैं।

यद्यपि गुरु वास्तव में ऐसा कुछ नहीं देते, जो शिष्य के पास नहीं है, तथापि वे साधक के अज्ञान के पीछे छिपे आध्यात्मिक खजाने को उजागर करने का साधन बनते हैं। गुरु से ही साधक दिव्य भाव और आध्यात्मिक स्फुरण प्राप्त करता है। जो कुछ साधक प्राप्त करता है, उसे वह अपनी सच्ची साधना से हजार गुना बढ़ाता है। सभी साधकों का यह कर्तव्य है। गुरु ही परा चेतना की ओर जाने वाला द्वार है, परन्तु साधक को स्वयं ही इस मार्ग पर चलना पड़ता है। गुरु से सहायता मिलती है, किन्तु व्यावहारिक साधना का कार्य तो साधक को स्वयं ही करना पड़ता है।

वास्तव में गुरु आपके हृदय में ही निवास करते हैं। वे सदा आपके साथ ही होते हैं। आपको सच्चे भाव से उनको स्मरण भर करना है और तुरन्त ही आप उनकी दिव्य अनुभूति प्राप्त करेंगे। जितना ही आपका निम्न-अहंकार कम होता जाएगा, गुरु आपमें तथा आपके समक्ष प्रकट होते जाएँगे। अत:

उनका स्वागत करने के लिये सदा तैयार रहिये एवं स्वयं को रिक्त बनाइये, ताकि वे आपमें अवतरित हो सकें।

शिष्य के कर्तव्य

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि जिस साधक की परमात्मा में परम भक्ति है तथा जितनी भक्ति परमेश्वर में है, उतनी ही भक्ति गुरु में भी है, उस महात्मा पुरुष के हृदय में ही ये रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं –

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः॥

शिष्य वह है, जो गुरु के उपदेशों का अक्षरशः पालन करता है, तथा उनकी शिक्षाओं का प्रचार आजीवन करता रहता है। सच्चा शिष्य केवल गुरु के दिव्य स्वरूप से सम्बन्ध रखता है। गुरु मानव होने के नाते जो कार्य करते हैं, उसकी वह चिन्ता नहीं करता। वह इस ओर पूर्ण विस्मरणशील-सा रहता है। उसके लिए गुरु गुरु हैं, भले ही वे लोकाचार के विपरीत व्यवहार करें। सदा स्मरण रखें कि सन्त का स्वरूप इतना व्यापक होता है कि उसे साधारण बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। उनके विषय में अपना कोई मत न बनाइए। अपने अज्ञान के अक्षम मापदण्ड से उनके दिव्य स्वरूप को न मापिये। व्यापक दृष्टिकोण से सम्पादित अपने गुरु के कार्यों की आलोचना न कीजिए।

विशुद्ध शिष्यत्व दृष्टि पर पड़े पर्दे को हटाता है। यह आध्यात्मिक अग्नि प्रज्वलित करता है, प्रसुप्त क्षमताओं को जागृत करता है। यह आध्यात्मिक पथ की यात्रा में सबसे आवश्यक सम्बल है। गुरु तथा शिष्य एक बन जाते हैं। गुरु शिष्य को आशीर्वाद देता, उसका पथप्रदर्शन करता तथा उसे प्रेरणा देता है। वह उसमें शक्ति-संचार करता, उसे रूपान्तरित करता और आध्यात्मिक बनाता है।

गुरु का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए आपको उपयुक्त अधिकारी होना चाहिए। विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, गुरु में श्रद्धा, भगवद्भक्ति – इन आवश्यक गुणों के साथ साधक को गुरु के समीप जाना चाहिए।

गुरु सेवा

शिष्यों को आरम्भ में अपना पूरा ध्यान गुरु की दीर्घकालिक सेवा द्वारा स्वार्थपरता के निष्कासन में लगाना चाहिए। अपने गुरु की सेवा दिव्य-भाव से

कीजिए। इससे पृथक् होने का भाव विलीन हो जायेगा। पोत का कप्तान सदा सतर्क रहता है। एक धीवर सदा सतर्क रहता है। शल्य-चिकित्सक शल्यकर्म-गृह में सदा सतर्क रहता है। इसी प्रकार शिष्य को अपने गुरु की सेवा में सदा सतर्क रहना चाहिए। गुरु के सेवार्थ जीवन यापन करें। आपको अवसरों की ताक में रहना चाहिए। आमन्त्रण की प्रतीक्षा न कीजिए। गुरु-सेवा के लिए अपने को स्वेच्छा से अर्पित कीजिए।

अपने गुरु की सेवा नम्रतापूर्वक, स्वेच्छापूर्वक, निर्विवाद, निरभिमानपूर्वक, खुशी से, अथक रूप से तथा प्रेमपूर्वक कीजिए। आप अपने गुरु की सेवा में जितनी अधिक शक्ति व्यय करेंगे, उतनी ही अधिक दिव्य शक्ति आप में प्रवाहित होगी। जो गुरु की सेवा करता है, वह सम्पूर्ण विश्व की सेवा करता है। गुरु की सेवा बिना किसी स्वार्थ के करें। गुरु की सेवा करते समय अपने आन्तरिक उद्देश्य का निरीक्षण करें। गुरु की सेवा नाम, यश, सत्ता, धन आदि की इच्छा के बिना की जानी चाहिए।

गुरु की आज्ञा पालन

गुरु के प्रति श्रद्धा रखने की अपेक्षा उनकी आज्ञाओं का पालन करना श्रेष्ठतर है। आज्ञाकारिता एक मूल्यवान् सद्गुण है, क्योंकि यदि आप आज्ञाकारिता के गुण का विकास करने का प्रयास करेंगे, तो आत्म-साक्षात्कार के पथ के कट्टर शत्रु अहं का शनैः-शनैः उन्मूलन हो जाएगा।

जो शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन करता है, केवल वही अपनी निम्न आत्मा पर आधिपत्य रख सकता है। आज्ञाकारिता अत्यन्त व्यावहारिक तथा सक्रिय होनी चाहिए। गुरु की आज्ञाकारिता न तो टाल-मटोल करती है और न सन्देह ही प्रकट करती है। दम्भी शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन भयवश करता है। सच्चा शिष्य अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन प्रेम के लिए, प्रेम के कारण करता है। आज्ञापालन की विधि सीखिए। उस स्थिति में ही आप आदेश दे सकते हैं। शिष्य बनना सीखिए, तभी आप गुरु बन सकेंगे।

इस भ्रामक धारणा को त्याग दीजिए कि गुरु की अधीनता स्वीकार करना, उनकी आज्ञा स्वीकार करना तथा उनकी शिक्षाओं को कार्यान्वित करना दासता की मनोवृत्ति है। अज्ञानी व्यक्ति समझता है कि किसी अन्य व्यक्ति की अधीनता स्वीकार करना उसकी गरिमा तथा स्वाधीनता के विपरीत है। यह एक भारी गम्भीर भूल है।

यदि आप ध्यानपूर्वक चिन्तन करें, तो आप देखेंगे कि आपकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता वास्तव में आपके अपने ही अहं तथा मिथ्याभिमान की नितान्त घृणित दासता है, विषयी मन की तरंग है। जो अपने अहं तथा मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, वास्तव में वही स्वतन्त्र व्यक्ति है। वह शूरवीर है। इस विजय को प्राप्त करने के लिए ही व्यक्ति गुरु के उच्चतर अध्यात्मिक व्यक्तित्व की अधीनता स्वीकार करता है। वह इस समर्पण के द्वारा अपने निम्न अहं को पराजित करता तथा असीम चेतना के आनन्द को प्राप्त करता है।

मनमुखी शिष्य

आध्यात्मिक पथ कला की स्नातकोत्तर उपाधि के लिए शोध-प्रबन्ध लिखने जैसा नहीं है। यह सर्वथा भिन्न प्रणाली है। इसमें गुरु की सहायता की आवश्यकता प्रतिक्षण रहती है। इन दिनों साधक आत्म-निर्भर, अभिमानी तथा स्वाग्रही बन गये हैं। वे गुरु की आज्ञाओं को क्रियान्वित करने की चिन्ता नहीं करते। वे गुरु बनाना नहीं चाहते। वे प्रारम्भ से ही स्वतन्त्रता चाहते हैं। वे समझते हैं कि वे तुरीय-अवस्था में हैं, जबकि उन्हें आध्यात्मिकता अथवा सत्य का प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं होता। वे मनमानी करने अथवा अपनी बात मनवाने को स्वतन्त्रता समझने की भूल करते हैं। यह गम्भीर शोचनीय भूल है।

यही कारण है कि उनकी उन्नति नहीं होती। वे साधना की क्षमता तथा ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास खो बैठते हैं। वे कश्मीर से गंगोत्री तक और गंगोत्री से रामेश्वरम् तक विचार-सागर और पञ्चदशी जैसे ग्रन्थों से कुछ अनाप-शनाप बकते तथा जीवन्मुक्त होने का ढोंग रचते हुए लापरवाही से बिना उद्देश्य ठोकरें खाते फिरते हैं।

समर्पण तथा कृपा

यदि आप नल से जल पीना चाहते हैं, तो आपको झुकना पड़ेगा। इसी भाँति यदि आप गुरु के पवित्र अधरों से प्रवाहित होने वाली अमरता-प्रदायक आध्यात्मिक सुधा का पान करना चाहते हैं, तो आपको विनय तथा विनम्रता का मूर्तरूप बनना होगा।

मन की निम्न प्रकृति को पूर्णतया बदलना चाहिए। साधक अपने गुरु से कहता है, 'मैं योगाभ्यास करना चाहता हूँ। मैं निर्विकल्प-समाधि में प्रवेश करना चाहता हूँ। मैं आपके चरणों में बैठना चाहता हूँ। मैंने आपको

आत्मसमर्पण कर दिया है।' परन्तु वह अपनी निम्न प्रकृति और स्वभाव को, पुराने चरित्र, व्यवहार और आचरण को परिवर्तित करना नहीं चाहता।

व्यक्ति को अपने अहं, धारणाओं, प्रिय विचारों, पूर्वाग्रहों तथा स्वार्थमयी इच्छाओं को त्याग देना चाहिए। ये सब गुरु के आदेशों और उपदेशों के पालन में बाधक हैं। अपने हृदय के भेद को अपने गुरु के सम्मुख अनावृत कर दें। आप जितना ही अधिक ऐसा करेंगे, उतनी ही कृपा, अर्थात् पाप तथा प्रलोभन के विरुद्ध संघर्ष में आपको शक्ति की प्राप्ति होगी।

गुरु की कृपा की आकांक्षा करने से पूर्व साधक को उसका पात्र बनना चाहिए। दिव्य कृपा की प्राप्ति तभी होती है, जब साधक में सच्ची प्यास हो और जब वह उसे ग्रहण करने योग्य हो। गुरु की कृपा उन्हीं पर अवतरित होती है, जो उनके प्रति पूर्णरूपेण विनम्र तथा निष्ठावान् होते हैं। निष्ठा गुरु में दृढ़ विश्वास तथा उनके प्रति स्वीकृति है। गुरु साक्ष्य अथवा आदेश के रूप में जो घोषित करता है, उसकी सत्यता पर बिना किसी अन्य साक्ष्य अथवा प्रमाण के दृढ़ विश्वास करना निष्ठा है। जिस शिष्य की गुरु में निष्ठा है, वह वाद-विवाद नहीं करता, सोच-विचार नहीं करता तथा चिन्तन नहीं करता। वह उसकी आज्ञाओं का पालन मात्र करता है।

शिष्य का गुरु के प्रति आत्मसमर्पण तथा गुरु की कृपा में पारस्परिक सम्बन्ध है। समर्पण गुरु की कृपा को नीचे की ओर आकृष्ट करता है तथा गुरु-कृपा समर्पण को पूर्ण बनाती है। गुरु-कृपा साधक में साधना के रूप में कार्य करती है। यदि साधक अपने पथ में दृढ़तापूर्वक संलग्न रहता है, तो यह गुरु-कृपा है। यदि प्रलोभन का आक्रमण होने पर वह प्रतिरोध करता है, तो

यह गुरु-कृपा है। यदि लोग प्रेम तथा सम्मान के साथ उसका स्वागत करते हैं, तो वह गुरु-कृपा है। यदि उसे सम्पूर्ण शारीरिक आवश्यकताएँ सुलभ हैं, तो यह गुरु-कृपा है। यदि नैराश्य तथा अवसाद के समय उसे प्रोत्साहन तथा बल प्राप्त होता है, तो यह गुरु-कृपा है। यदि वह शरीर-चेतना का अतिक्रमण कर जाता है और अपने आनन्द-स्वरूप में विश्राम करता है, तो यह गुरु-कृपा है। प्रत्येक पग पर उनकी कृपा का अनुभव कीजिए तथा उनके प्रति निष्कपट और सत्यनिष्ठ रहिए।

गुरु की उपदेश-विधि

गुरु व्यक्तिगत उदाहरण द्वारा शिक्षा देते हैं। गुरु का दैनन्दिन आचरण सतर्क शिष्य के लिए एक जीवन्त आदर्श है। सच्चे शिष्य के लिए गुरु का जीवन एक जीवन्त धर्मोपदेश है। शिष्य अपने गुरु के निरन्तर सम्पर्क द्वारा उनके सद्गुणों को आत्मसात् करता है। वह शनैः-शनैः नव आकार लेता है। छान्दोग्योपनिषद् को पढ़िए। उसमें आप पायेंगे कि इन्द्र प्रजापति के पास एक सौ एक वर्ष तक रहे और उनकी अनन्य भाव से सेवा की।

अपने शिष्यों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं को केवल गुरु ही जानता है। वह शिष्य की प्रकृति तथा विकास के अनुसार उपदेश देता है। इस उपदेश को गुप्त रखना चाहिए। शिष्यों में उसकी परिचर्चा, गुरु की आलोचना तथा साधना में शिथिलता की ओर ले लाती है। आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो पाती है। गुरु के उपदेश का अक्षरशः पालन कीजिए। स्मरण रखिए कि वह केवल आपके लिए है। अन्य शिष्यों ने भी गुरु का उपदेश ग्रहण किया हुआ है। उन्हें उसका पालन करने दीजिए। आपने जो उपदेश प्राप्त किया है, उसे दूसरों पर न थोपिए।

शिष्य अपनी निष्ठा की मात्रा के अनुपात में ही अपने गुरु से कृपा प्राप्त करता है। जब गुरु आध्यात्मिक उपदेश देने के लिए शिष्य के पास आता है, उस समय शिष्य यदि ध्यान नहीं देता, वह यदि अभिमानी और लापरवाह है, यदि वह अपने हृदय-द्वार में ताला लगा देता है, तो वह लाभान्वित नहीं होता।

गुरु द्वारा परीक्षा

सद्गुरु बार-बार अनुनय-विनय करने तथा कठोर परीक्षा लेने के पश्चात् ही अपने विश्वस्त शिष्यों को उपनिषद् के गूढ़ रहस्यों को बतलाता है। गुरु कभी-कभी

अपने शिष्य को प्रलोभित कर सकता है, किन्तु शिष्य को चाहिए कि गुरु में दृढ़ निष्ठा के द्वारा इसे पार कर जाए।

प्राचीनकाल में बहुत ही कठिन परीक्षाएँ ली जाती थीं। एक बार गोरखनाथ जी ने अपने कुछ शिष्यों को एक ऊँचे वृक्ष पर चढ़ने तथा सिर के बल नीचे एक तीक्ष्ण त्रिशूल के ऊपर कूदने के लिये कहा। अनेक अविश्वासी शिष्य निश्चल खड़े रह गये, किन्तु एक निष्ठावान् शिष्य तत्काल वृक्ष पर विद्युत-गति से चढ़ गया और अपने को नीचे गिरा दिया। गोरखनाथ जी के अदृश्य हाथों ने उसकी रक्षा की। उसे तत्काल आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हुआ।

गुरु शिष्यों की विविध प्रकार से परीक्षा लेता है। कुछ शिष्य उन्हें गलत समझते हैं और उनमें अपनी निष्ठा खो बैठते हैं, अत: वे लाभान्वित नहीं होते।

चार प्रकार के शिष्य

सर्वोत्तम शिष्य पेट्रोल की भाँति होता है। वह बहुत दूर से गुरु के उपदेश के स्फुल्लिंग के प्रति तत्काल प्रतिक्रिया करता है। द्वितीय प्रकार का शिष्य कर्पूर की भाँति होता है। एक स्पर्श उसकी अन्तरात्मा को जगाता और उसमें आध्यात्मिकता की अग्नि प्रज्वलित करता है। तृतीय प्रकार का शिष्य कोयले की भाँति होता है। उसमें भाव उत्पन्न करने के लिये गुरु को कठोर श्रम करना पड़ता है। चतुर्थ प्रकार का शिष्य केले के स्तम्भ की भाँति होता है। उस पर किया गया कोई भी प्रयास सफल नहीं होता। गुरु चाहे कुछ भी करे, वह भावशून्य तथा निष्क्रिय बना रहता है।

सुन्दर ढंग से तैयार की हुई मूर्ति अथवा प्रतिमा के लिए दो वस्तुएँ आवश्यक होती हैं। एक है संगमरमर का पूर्ण निर्दोष सुन्दर प्रस्तर-खण्ड तथा दूसरा है निपुण मूर्तिकार। सुन्दर प्रतिमा बनाने के लिए संगमरमर-खण्ड को अप्रतिबन्धित रूप से मूर्तिकार के हाथों में रहना चाहिए। इसी भाँति शिष्य को भी अपने को निर्मल तथा शुद्ध करना एवं पूर्णतया निर्दोष संगमरमर का प्रस्तर-खण्ड बनाना चाहिए तथा अपने आपको भगवान की मूर्ति के रूप में तराशने के लिए अपने गुरु के कुशल हाथों में छोड़ देना चाहिए।

गुरु पूर्णिमा वह अवसर है, जब आप गुरु भक्ति को पुनर्जीवित करके तथा अपनी अपवित्र इच्छा और अहंकार का सच्चा समर्पण करके साधना शक्ति को अपने अन्दर जागृत कर सकते हैं। आप सभी को भगवान व्यास और सभी ब्रह्मविद्या गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हो!

गुरु की अन्तरात्मा से सम्बन्ध

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हम सबको शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक सम्बन्धों की कुछ समझदारी है, क्योंकि हम अनेक वर्षों से इनका अनुभव करते रहे हैं। किन्तु दो व्यक्तियों के बीच के आध्यात्मिक सम्बन्धों के निहितार्थों को समझना बहुत कठिन है, जब तक कि उनकी स्पष्ट व्याख्या न कर दी जाय।

आध्यात्मिक सम्बन्ध धार्मिक सम्बन्ध नहीं है। यह विश्वास द्वारा भी निर्मित नहीं है। हमारे अन्दर की आध्यात्मिक सजगता अभी भी प्रसुप्तावस्था में है। इसका अभी उद्भव नहीं हुआ है। हमारा शारीरिक सम्पर्क आसानी से हो सकता है, और अपने इन्द्रियोत्तर बोध को विकसित करके हम मानसिक स्तर पर भी निश्चय ही एकत्व स्थापित कर सकते हैं। एक-दूसरे के प्रति प्रेम और भक्ति द्वारा भी हम भावनात्मक रूप से एक हो सकते हैं। किन्तु गुरु के साथ घनिष्ठता, संयोग या सम्बन्ध का वास्तविक उद्देश्य तो आध्यात्मिक स्तर पर एकता स्थापित करने से है।

प्रथम पूर्वापेक्षा

जब तक हम अपनी आत्मा को जाग्रत नहीं करते, आध्यात्मिक संयोग कदापि कायम नहीं हो सकता। आत्मा एक ऐसा शब्द है जिसे ठीक-ठीक नहीं समझा जाता। लोग इसे भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, किन्तु मेरी समझ से यह

एक प्रकार की सजगता है, जिसकी कोई सीमा नहीं होती। यह अनवरुद्ध है तथा देश, काल और पदार्थ के क्षेत्रों से परे की चीज है। भौतिक सजगता की अनेक सीमाएँ होती हैं। मानसिक सजगता के अवरोध उससे कम होते हैं। भावनात्मक सजगता की सीमाएँ और भी कम होती हैं तथा यह सर्वाधिक सक्षम होती है। एक माँ अपने छोटे बच्चे का अनुभव कर सकती है तथा किसी भी क्षण उससे संचार स्थापित कर सकती है, चाहे उनके बीच कितनी भी दूरी क्यों न हो। किन्तु आध्यात्मिक और आत्मिक सजगता भावनात्मक सजगता को भी पार कर जाती है।

जब आत्मिक सजगता या आत्मानुभूति, जैसा कि वेदान्त में कहा जाता है, जाग्रत होती है तब हम गुरु के साथ ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षी एवं वनस्पति जगत् समेत समस्त प्राणियों के साथ एकत्व का अनुभव करते हैं। आत्मानुभूति एक ऐसी चीज है जिसकी व्याख्या करना कठिन है। किन्तु यदि हम गुरु के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं तो यह वह पहली चीज है जिसे विकसित करना ही होगा।

समर्पण और सेवा का जीवन

गुरु और शिष्य के बीच के सम्बन्ध की मान्यता के अनुसार आचरण करना बहुत कठिन है तथा उससे भी अधिक कठिन है उसे समझना, क्योंकि यह बुद्धि और भावना के क्षेत्र से परे की चीज है। यही कारण है कि हम इस विशिष्ट सम्बन्ध को स्थापित करने में बार-बार असफल होते हैं। ऐसा इसलिये नहीं होता कि हम धार्मिक या नैतिक शर्तों को पूरा नहीं कर पाते; यह तो इसलिये होता है कि हम ठीक-ठीक यह नहीं जानते कि हमें गुरु के प्रति किस प्रकार का भाव रखना चाहिये। क्या हमें उनके प्रति एक दास, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी, मित्र या भक्त का भाव रखना चाहिये? जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह इनमें से किसी भी परिभाषा के दायरे में नहीं आता, यद्यपि गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध निश्चित रूप से एक पूर्ण सम्बन्ध होता है।

जब मैं अपने गुरु के आश्रम में तन-मन से पूर्ण निःस्वार्थ भाव के साथ बहुत कठोर परिश्रम किया करता था तो मैं उनकी कृपा के भौतिक स्वरूप के बारे में कभी भी नहीं सोचता था। जिस व्यक्ति को मैं प्यार करता था उनके बारे में सोचना मेरा स्वभाव ही नहीं था। मुझे उनके लिये काम करना तथा अपनी समस्त शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक शक्ति समर्पित करना

अति उत्तम लगता था। अभी भी अपना प्रत्येक कर्म उन्हें समर्पित करते हुए मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने सिर्फ उन पर ध्यान करने की अपेक्षा बहुत अधिक किया है। मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने उनसे तादात्म्य स्थापित करने का कार्य लगभग पूरा कर लिया है। गुरु और आध्यात्मिक जीवन के प्रति मेरा सदा से यही व्यावहारिक दृष्टिकोण रहा है।

आश्रम-निवास की उस अवधि में, जब मैं अपने गुरु के लिये अनेक दायित्वों का सम्पादन कर रहा था, मेरे लिये उनके निकट जाना भी आवश्यक नहीं था। हाँ, जब कार्य से सम्बन्धित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती थी तो मैं अवश्य उनके पास जाता था। जब मैं उनकी पाण्डुलिपियाँ टाइप करता था तो उन्हें उनसे लेने प्रतिदिन उनके पास जाता था। किन्तु जब मैं आश्रम का प्रशासक था तो मेरे लिये उनसे महीने में एक बार मिलना भी आवश्यक नहीं था, क्योंकि मेरे कार्य क्षेत्र से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। इसी प्रकार आश्रम में मैंने वह लम्बा समय बिताया। मैं शायद ही कभी अपने गुरु के बारे में सोचता था, किन्तु उनके लिये निरन्तर कार्यरत रहा करता था।

आज मैं सोचता हूँ कि उन दिनों मैं सेवा के लिये उतना नहीं जितना कि अपनी आन्तरिक शान्ति और जागृति के लिये कार्य कर रहा था। उस समय मैं बहुत युवा, अत्यन्त ओजस्वी और अत्यधिक उग्र था और मेरे लिये यह आवश्यक था कि अपनी शक्ति को सही दिशा में प्रवाहित करूँ। अन्यथा मेरा मन पथभ्रष्ट हो जाता। अपने समस्त कार्यों का सम्पादन करते हुए भी मुझे सब प्रकार की शरारतें करने का समय मिल जाता था। मुझमें इतनी ऊर्जा थी कि प्रत्येक सुबह कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व मैं चार बार गंगा के आर-पार तैर लिया करता था। रात्रि में अपना कार्य समाप्त करने के बाद मैं कुछ समय के लिये अध्ययन किया करता था और तदुपरान्त अपने पुरश्चरण के लिये गंगा के किनारे आसन लगाकर बैठ जाता था। इस हेतु मैं एक स्व-रचित मन्त्र का उपयोग करता था, यह मुझे गुरु द्वारा प्रदान नहीं किया गया था। यह गायत्री मन्त्र के समान ही लम्बा था और मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसकी चौबीस लाख आवृत्तियाँ करूँगा। इस साधना को पूर्ण करने में मुझे अनेक वर्ष लगे। अपना पुरश्चरण समाप्त करने के बाद मैंने रात्रि-पहरेदार का उत्तरदायित्व सम्भाला। मैं सम्पूर्ण आश्रम की जाँच किया करता था जो एक बड़े क्षेत्र में फैला हुआ था। प्रातःकाल अपना कार्य मैं रसोई घर से प्रारम्भ करता था।

इस कठोर परिश्रम और साधना का परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे आत्मानुभूति से मेरा साक्षात्कार हुआ। मेरे अन्दर आध्यात्मिक सजगता का उद्भव हुआ। तब यह बिल्कुल स्वाभाविक ही था कि मैं अपने गुरु के साथ महत्तर, गहनतर और अधिक सत्यनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम हुआ।

एक जीवन्त अनुभव

सन् 1963 में, जब मैं मुंगेर स्थित आनन्द-भवन में रह रहा था, मुझे अपने गुरु का एक जीवन्त अनुभव हुआ। यह उतना ही वास्तविक था जितना कि हमारी बातचीत है। मैं सोचता हूँ कि मुझे वह अनुभव सिर्फ इसलिये हुआ कि मेरे अन्दर आत्मानुभूति विकसित हो चुकी थी, जो गुरु से आध्यात्मिक स्तर पर सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम थी। अतः 13 जुलाई की मध्यरात्रि में मुझे प्रथम आज्ञा, या मौन आदेश मिला और जब अनुभव का अन्त हुआ तब मेरे लिये यह निर्धारित करना कठिन था कि वास्तविकता क्या थी – मेरा अन्तर्जगत् या बाह्य स्थान। लगभग एक घंटे के बाद मैं समझ सका कि मैं आनन्द-भवन में हूँ तथा मुझे अभी-अभी आन्तरिक अनुभूति हुई थी।

सम्बन्ध स्थापित करने के लिये आपको वह उच्चतर व्यक्तित्व या आयाम अवश्य ही विकसित करना होगा जो गुरु के प्रति सतत् सजग रहे। यह संभव है, और अधिक कठिन नहीं। हमारे अन्दर उस उच्चतर सजगता को विकसित करने के लिये आवश्यक 'कच्चा माल' पूर्व से ही विद्यमान है। हम विकसित प्राणी हैं तथा सजगता के तीन आयामों – जागृति, स्वप्न और निद्रा के बीच संचार स्थापित कर सकते हैं।

वास्तव में स्वप्नावस्था जाग्रत अवस्था से बहुत अधिक शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक है। किन्तु अनुभूति के उपकरण पर हमारा नियन्त्रण न होने के कारण हम अपने स्वप्नों का परिचालन करने में असक्षम हैं। यदि हम स्वप्न के अनुभव का विस्तार कर सकें तथा स्वेच्छापूर्वक स्वप्न की सृजन और समाप्ति कर सकें तो हम आत्मानुभूति के अधिक निकट आ सकते हैं।

जाग्रत अवस्था में हम सिर्फ पदार्थ, इन्द्रियों और मन की अन्तःक्रियाओं का अनुभव कर सकते हैं। गुलाब के अभाव में आप गुलाब का अनुभव नहीं कर सकते। जागृति एक अति सीमित अवस्था है, क्योंकि इसमें प्रत्येक चीज इन्द्रियों पर निर्भर करती है। यदि आप नेत्रहीन हो तो नहीं देख सकते, यदि बहरे हो तो नहीं सुन सकते। किन्तु स्वप्नावस्था की कोई सीमा नहीं है, बशर्ते कि आप अनुभव के उपकरण पर अधिकार प्राप्त करने, उसे नियन्त्रित करने में सक्षम हों।

वह उपकरण क्या है? यह चेतना के सम्पूर्ण आयाम की सजगता है। स्वप्न क्या है? यह आपके अप्रशिक्षित मन की अभिव्यक्ति है। जिस प्रकार एक बच्चा जब चलना शुरू करता है तो लड़खड़ाकर गिर पड़ता है, क्योंकि अभी उसका शरीर या उसके अंग प्रशिक्षित नहीं हैं, ठीक इसी प्रकार अप्रशिक्षित मन स्वप्नावस्था में अपने अन्दर के संचित संस्कारों के सन्दर्भ में स्वयं को व्यक्त करता है। जब आप दोषपूर्ण दृष्टि से अपने संस्कारों को देख रहे हैं तो यही स्वप्न है।

आसन, प्राणायाम, मन्त्र तथा अन्य तकनीकों द्वारा आप स्वप्न को परिष्कृत कर सकते हैं और जो कुछ भी चाहें देख सकते हैं। आप वैसी चीजों को भी देख सकते हैं जो मन और इन्द्रियों के क्षेत्र से परे हैं। आप एक पुष्प, पशु, मनुष्य या किसी वस्तु का निर्माण कर सकते हैं। आप एक संवेदना, अनुभव, कार्य या एक सम्पूर्ण कहानी की रचना भी कर सकते हैं।

स्वप्न की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर नियन्त्रण प्राप्त करके आप अपनी आत्मा का विकास कर सकते हैं।

आन्तरिक सम्बन्ध की स्थापना

बहुत-से लोग स्वप्न की प्रक्रिया को नियन्त्रित करके अपने गुरु को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। इस अवस्था में अपने मन को शान्त करके वे उनकी उपस्थिति का अनुभव कर सकते हैं और मन को आत्मा के निकटतर लाकर वे उन्हें वैसे ही देख सकते हैं मानो वे सचमुच वहाँ हैं। तब वे उनसे वैसा ही संचार स्थापित करने में सक्षम होते हैं जैसा कि भौतिक स्तर पर सम्भव होता है।

अतः यदि आप चेतना के आन्तरिक उपकरण को तेज करने में सक्षम हो जायें तो अपनी सजगता को आत्मा के स्तर तक ऊपर उठा सकते हैं। तदुपरान्त गुरु और शिष्य के बीच संचार या सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। तब शिष्य का कर्त्तव्य गुरु के आदेशों का पालन करना हो जाता है। मैंने अपने गुरु से एक निर्देश प्राप्त किया। वह यह था कि 'योग प्रकाश है और तुम उसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाओ।' बस, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। मेरे और मेरे गुरु के बीच यही एकमात्र सम्बन्ध है।

आप लोगों में से जो भी गुरु के साथ सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं वे एक बात का ख्याल अवश्य रखें – सिर्फ भक्ति या भावना द्वारा आप उनके निकट नहीं आ सकेंगे, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति को भावनात्मक रूप से प्रत्युत्तर

दे पाना उनके लिये कठिन है। मैं तो वह भाषा तनिक भी नहीं समझता हूँ, किन्तु हमारे पास सम्बन्ध स्थापित करने का एक उपाय है। यदि आप अपने परिवार तथा मित्रों के बीच योग के लिये कार्य करें और इस विज्ञान को कम-से-कम आधे दर्जन लोगों तक पहुँचा सकें तथा उन्हें जीवन में एक दिशा प्रदान कर सकें, तो आप मेरे बहुत निकट आ सकते हैं। योग के सन्देश को प्रत्येक द्वार और प्रत्येक देश तक पहुँचाना ही एक ऐसी बात है जो सदैव मेरे मन में बनी रहती है।

कार्य में हिस्सा बँटाना

अपने गुरु के सेवक के रूप में उनके आदेशों का पालन करते हुए मैं सिर्फ यह चाहता हूँ कि बहुत-से लोग मेरे इस भारी बोझ को ढोने में हिस्सा बँटायें। आने वाले वर्षों में आध्यात्मिक जीवन की जागृति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। कोई एक पैगम्बर इस कार्य का सम्पादन कदापि नहीं कर सकेगा। आध्यात्मिक पुनर्जागरण के अभियान में प्रत्येक व्यक्ति को सहयोग करना होगा। लाखों लोगों के सहयोग करने पर ही यह महान् कार्य सम्पन्न हो सकेगा। मैं वह अन्तिम व्यक्ति हूँ जो यह विश्वास करता है कि एक पैगम्बर आयेगा, जादू करेगा और अकेले समस्त कार्यों को पूरा कर देगा। आज किसी एक व्यक्ति द्वारा मानव जाति का नेतृत्व नहीं किया जा सकता है। किसी भी महान् कार्य में प्रत्येक व्यक्ति का योगदान आवश्यक है।

अतः घर वापस जाने के बाद यदि आप अनुभव करें कि आपके परिवार के सदस्यों, मित्रों, सम्बन्धियों एवं सहकर्मियों को मानसिक शान्ति, शिथिलता, गहरी निद्रा, अच्छे स्वास्थ्य, एक जीवन-दर्शन तथा संसार में कार्य करने के लिये एक सही मानसिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है, तो याद रखें कि आप योग द्वारा उनकी सहायता कर सकते हैं। आश्रम में प्राप्त आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, ध्यान, योगनिद्रा एवं योग-चिकित्सा की शिक्षा द्वारा आप हजारों लोगों को जगाने में तो सक्षम नहीं हो सकते (यह महत्त्वपूर्ण भी नहीं है), किन्तु आप कम-से-कम आधे दर्जन लोगों का मार्गदर्शन करने में सफल हो सकेंगे।

दूसरों को योग का प्रकाश प्रदान करते समय आप अनुभव करेंगे कि आप मेरे बहुत निकट हैं, क्योंकि मैं गुरु नहीं हूँ, शिष्य हूँ और एक शिष्य के रूप में मुझे सह-शिष्यों की आवश्यकता है जो मेरे गुरु के आदेशों की पूर्ति करने में मेरी सहायता कर सकें।

गुरु की परिभाषा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

गुरु कौन होते हैं, इसे लोग धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं और आजकल लोग स्वयं को गुरु रूप में घोषित करने से भी नहीं हिचकते। इसलिए मन में एक प्रबल इच्छा हुई कि गुरु की व्याख्या को सही तरीके से कर सकें, लोगों को बतला सकें कि वास्तव में गुरु कौन होता है।

ब्रह्मविद्या परंपरा

हमलोगों की परम्परा में एक मंत्र है, जिसका पाठ हमलोग हमेशा करते हैं – *'ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या-संप्रदाय-कर्तृभ्यो वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः'।* यह गुरु परंपरा का प्रथम मंत्र है, जिसका अर्थ होता है – ब्रह्म आदि को नमस्कार, ब्रह्मविद्या संप्रदाय के प्रवर्तकों को नमस्कार, ऋषियों के वंशों को तथा गुरुजनों को नमस्कार। इस मंत्र की शुरुआत होती है एक विशेष शब्द के साथ – ब्रह्मविद्या संप्रदाय, और जो ब्रह्मविद्या संप्रदाय से जुड़ा रहता है, उसे ही गुरु कहते हैं। लेकिन यह ब्रह्मविद्या है क्या? बहुत-से व्याख्याकार और कथाकार ब्रह्मविद्या को परमात्मा से जोड़ते हैं, कहते हैं कि परमात्मा का ज्ञान ही ब्रह्मविद्या है, किन्तु परंपरा तथा शास्त्रों के अनुसार जीवन, सृष्टि और परमतत्त्व के रहस्य को जो जानता है, उसे ही ब्रह्मवेत्ता कहते हैं और इसी ज्ञान को ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। जीवन, सृष्टि और परमतत्त्व – इन तीनों के रहस्य को जो जानता है, उसे ही गुरु कहते हैं।

प्रथम वेद, ऋग्वेद में नासदीय सूक्त आता है, जिसके पहले मंत्र में कहा गया है –

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

इस मंत्र का भाव यह कि आरंभ में शून्यता नहीं थी और अभिव्यक्ति भी नहीं थी। मृत्यु नहीं थी, जीवन भी नहीं था। हवा भी नहीं थी और स्वर्ग भी नहीं था। कहाँ थे ये, किसके संरक्षण में थे ये, क्या वहाँ पर आकाशगंगा भी रही? उस समय न मृत्यु थी न अमरत्व था, उस समय न दिन था न रात थी,

और जो था वह बिना वायु के श्वास लेकर स्वयं को संरक्षित रखता था। केवल वही था, दूसरा और कोई नहीं था। बड़ा विचित्र वाक्य है, लेकिन बहुत ही सुंदर बात कही गयी है।

आपने शायद कभी सुना होगा कि यह सृष्टि ब्रह्म की श्वास है। जब ब्रह्म श्वास छोड़ते हैं तो सृष्टि होती है और जब ब्रह्म श्वास लेते हैं तो सृष्टि उनमें समाहित हो जाती है। प्रश्वास के साथ सृष्टि का विस्तार होता है और श्वास के साथ सृष्टि वापस ब्रह्म में समाहित हो जाती है। श्वास और प्रश्वास के बीच की एक अवस्था है, जहाँ पर हवा नहीं है और जिसको योगीजन कुंभक कहते हैं। कुंभक में वह सामर्थ्य, वह शक्ति है, जो पुनः सृष्टि के कार्य को सुचारु रूप से करती है और सृष्टि के कार्य का समापन भी करती है।

ब्रह्म का यह जो श्वास-प्रश्वास है, वह आखिर है क्या? हमारे यहाँ वेदों में एक वाक्य आता है – '*खं ब्रह्म*'। खं आकाश तत्त्व का द्योतक है और यहाँ कहा गया है कि आकाश ही ब्रह्म है। अगर आप विज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं तो निश्चित रूप से आपको मालूम होगा कि आकाश अनंत है, असीम है। उसका न उत्तर है, न दक्षिण है, न पूर्व है, न पश्चिम है। वह सर्वव्यापी है। इस आकाश तत्त्व में अनेक ब्रह्मांड हैं, इस आकाश तत्त्व में ही अनेक सूर्य, चंद्र, ग्रह-नक्षत्र और आकाशगंगाएँ हैं। हम अपनी आकाशगंगा को देखकर यह नहीं कहते कि आकाश की इतनी ही सीमा है। पता नहीं कितना व्यापक है यह आकाश

और सृष्टि इसी आकाश पर आधारित है। सृष्टि आकाश में ही है, जब इसका विलय होता है तो आकाश खाली हो जाता है और जब सृजन होता है तो आकाश आकाशगंगाओं से, ब्रह्मांडों से परिपूर्ण हो जाता है। इसीलिए हमारे वेदों में कहा गया कि आकाश ही ब्रह्म है, लेकिन वेदों का यह ब्रह्म 'ब्रह्मा' नहीं है जो एक ब्रह्मांड की सृष्टि करता है। वेदों का यह ब्रह्म समस्त ब्रह्मांडों का संयोजक है और इसे ही परमेश्वर के नाम से जाना जाता है। जो इसको जानता है, जो इसका अनुभव करता है, उसे ही हम ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

शिव-परिवार

आकाश का अपना कोई रूप नहीं होता। जल का अस्तित्व है, उसका एक स्वरूप है, अग्नि का अस्तित्व और स्वरूप है, वायु का अस्तित्व है, उसका आभास होता है, धरती का अस्तित्व है, एक स्वरूप है, लेकिन आकाश का कोई स्वरूप नहीं होता, वह तो सर्वव्यापक है। हमारे गुरुदेव कहते थे कि आकाश ही ॐ है, आकाश ही परमशिव है, आकाश ही शिव-परिवार है। जिन लोगों ने शास्त्रों का अध्ययन किया है, उन्हें यह जानकारी होगी कि ओंकार का जो स्वरूप या चित्र हम अपने सामने देखते हैं, उसके देवता महागणपति हैं। ओंकार स्वयं शिव हैं, क्योंकि वे अनंत, व्यापक और अनादि हैं। ओंकार की ऊर्जा आदिशक्ति हैं और कार्तिकेय जी ओंकार के गुरु हैं। इस प्रकार शिव-परिवार के सभी सदस्य – शिव जी, जगज्जननी माँ पार्वती, कार्तिकेय जी और गणेश जी – ये सब ओंकार के विविध रूपों के अधिष्ठाता देवता हैं।

शिवपुराण में कहा गया है कि शिव जी की इच्छा से उनके वाम भाग से विष्णु का जन्म होता है और विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा जी का जन्म होता है, जो इस ब्रह्मांड के रचयिता हैं। जब विष्णु जी तथा ब्रह्मा जी अनंत में खोज रहे थे कि हमारे रचयिता कौन हैं तब उस समय दोनों में विवाद हो गया – 'मैं पहले आया', 'नहीं, मैं पहले आया', 'मैं बड़ा हूँ, तुम छोटे हो'। जब दोनों के बीच यह विवाद चल रहा था तब उस समय दोनों के मध्य अग्नि-स्तंभ के रूप में ओंकार नाद के साथ शिव जी प्रकट हुये थे और दोनों से कहा था कि मैं ही अनादि हूँ, मैं ही शाश्वत हूँ और तुम दोनों मेरे ही अंग हो।

यहाँ प्रश्न उठता है कि नारायण को शिव जी के वाम भाग से क्यों उत्पन्न होना पड़ा, वे तो दाहिने भाग से भी उत्पन्न हो सकते थे? किसी भी कार्य के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है और हमारे यहाँ वाम भाग शक्ति का

प्रतीक माना गया है। सृष्टि के लिए, संसार के पालन-पोषण के लिए शक्ति की आवश्यकता होती है, लेकिन वह शक्ति जिसमें पुरुषत्व भी हो। शक्ति को लोग हमेशा स्त्री रूप में देखते हैं, किंतु शक्ति हमेशा स्त्री रूप में नहीं होती, शक्ति में जब पुरुषत्व आता है तो वह नारायण का रूप होता है और शक्ति में जब मातृशक्ति का ही स्वरूप रहता है तो वह शिवशक्ति पार्वती के रूप में प्रकट होती हैं।

इसलिए नारायण वाम भाग से उत्पन्न होते हैं, जो शक्ति का प्रतीक है, लेकिन उनमें पुरुषत्व है। नारायण की नाभि से कमल उत्पन्न होता है, जिसपर ब्रह्मा जी विराजमान रहते हैं। नाभि क्या है? मणिपुर चक्र, जो ऊर्जा और शक्ति का केंद्र है। उस शक्ति केंद्र से एक ऐसी ऊर्जा प्रकट होती है, जो सृष्टि का कार्य करने में सक्षम है। यह ऊर्जा निर्माण का कार्य करती है, विध्वंस का नहीं। लोग ऊर्जा का प्रयोग अधिकतर विध्वंस के लिए करते हैं, चाहे वह ऊर्जा परमाणु बम की हो या बंदूक की गोली की, लेकिन यहाँ पर ब्रह्मा जी रचनात्मक ऊर्जा के स्वरूप में प्रकट होते हैं। उनके चार सिर हैं जो इस ब्रह्माण्ड की प्रमुख ऊर्जाओं और अवस्थाओं के प्रतीक हैं जिनके द्वारा जीवन का संचालन होता है।

विभिन्न ब्रह्माण्ड और ब्रह्मा

हमारे पुराणों और साहित्यों में उल्लेख आता है कि हर ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा अलग होते हैं। किसी का एक सिर है, किसी के दो तो किसी के तीन। हमारे ब्रह्माण्ड के ब्रह्माजी चार सिर वाले हैं। ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड भी हैं जहाँ पर ब्रह्मा जी के सौ सिर हैं, हजार सिर हैं। यह सब क्या दर्शाता है? ब्रह्मा जी के ये सब सिर क्या हैं? ये सिर चार ऊर्जाओं, चार अवस्थाओं के प्रतीक माने जाते हैं। लेकिन ऊर्जाएँ केवल चार नहीं हैं। जिस ब्रह्माड में सहस्त्र सिर वाले या सौ सिर वाले या दस सिर वाले ब्रह्मा हैं, इसका मतलब कि उस ब्रह्माड की इतनी अवस्थाएँ हैं या वह इतनी ऊर्जाओं से संचालित होता है। आपका जीवन किसके द्वारा संचालित होता है, उसकी कौन-सी चार अवस्थाएँ हैं? मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये चार हुये कि नहीं? पाँचवाँ नहीं है। तत्त्व भी चार हैं। भले ही हमलोग आकाश को लेकर पंचतत्त्व कहते हैं, लेकिन आकाश तो सर्वव्यापी है, उस आकाश में चार ही तत्त्व हैं – वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। ये भी तो चार हुये।

इस प्रकार हमारा ब्रह्माण्ड चार अवस्थाओं, चार तत्त्वों, चार ऊर्जाओं द्वारा संचालित होता है, और इसीलिए हमारे ब्रह्माजी के चार सिर हैं। ये अवस्थाएँ और ऊर्जाएँ शक्ति के ही स्वरूप हैं, जो नारायण के नाभि-कमल से प्रकट होते हैं। लेकिन जिस स्थल पर नारायण का प्राकट्य हुआ, जिस स्थल पर ब्रह्माजी का प्राकट्य हुआ और जिस स्थल पर शिवजी अग्नि-स्वरूप और ओंकार-नाद के रूप में प्रकट हुये, वह तो आकाश तत्त्व ही था, जिसे हमलोग शिवतत्त्व भी कहते हैं। शिवजी जल में प्रकट नहीं हुये थे, क्योंकि उस समय जल तो था ही नहीं; धरती पर प्रकट नहीं हुये, धरती तो थी ही नहीं, वायुतत्त्व भी नहीं था, और शिव अपने आप में ही समाहित थे। उस समय न दिन था, न रात, उस समय कोई तत्त्व नहीं थे। उस समय जन्म और मृत्यु नहीं थे, मात्र एक अस्तित्व, जिसको हमलोग कहते हैं परब्रह्म या परमात्मा। परमात्मा का जो ज्ञाता होता है, और उसके पश्चात् इनके परिणामों का जो ज्ञाता होता है, जैसे ब्रह्मांडों का निर्माण एवं विकास, और इसके पश्चात् जो जीवन का ज्ञाता होता है, उसे ही गुरु कहते हैं।

गुरु परंपरा

गुरु परंपरा के प्रथम मंत्र में आगे कहा जाता है – *वंशऋषिभ्यो नमो गुरुभ्यः* – 'ऋषियों के वंश तथा गुरुजनों को नमस्कार', क्योंकि ऋषि और गुरुजन ही इस ब्रह्मविद्या को संरक्षित रखकर इस विद्या को सर्वसुलभ बनाते हैं। इसकी शुरुआत होती है नारायण से – *'नारायणं पद्मभवं वशिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविंदयोगींद्रमथास्यशिष्यं श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यं तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मत्गुरून् संततं मानतोऽस्मि।'*

यहाँ पर आदिगुरु भगवान नारायण को माना गया है, क्योंकि शिवजी से सर्वप्रथम प्राकट्य उन्हीं का होता है। शिवजी तो व्यापक हैं, अनादि हैं, अनंत हैं, लेकिन इस अनादि, अनंत, व्यापक तत्त्व से जिस पहले जीवन का निर्माण होता है, वह है नारायण का। और नारायण से फिर ब्रह्माजी का उद्भव होता है। इसलिए पहले नमस्कार किया गया है आदिगुरु भगवान नारायण को, फिर उनके शिष्य ब्रह्माजी को जो उनसे प्रकट हुये हैं, उनके शिष्य वशिष्ठ को, उनके शिष्य शक्ति को, उनके पुत्र पराशर को, उनके शिष्य व्यासदेव को और फिर उनके शिष्य शुकदेव को। यह हुई हमलोगों की ऋषि परंपरा।

उसके बाद गुरु परंपरा आरंभ होती है, उनके शिष्य गौडपादाचार्य से, फिर उनके शिष्य योगीन्द्र गोविंदपादाचार्य, उनके शिष्य महान् योगी शंकराचार्य, फिर शंकराचार्य जी के जो चार शिष्य भारत के चार कोनों में स्थापित हुये – पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य और सुरेश्वराचार्य। यह हुई गुरु परंपरा और उसके बाद के अपने सभी गुरुजनों को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ।

इस मंत्र में सबसे पहले बतलाया गया नारायण से लेकर शुकदेव तक, जो हमारी ऋषि परंपरा के प्रणेता, ऋषि परंपरा में अद्वितीय ऋषि रहे हैं। वैज्ञानिक बहुत हैं, लेकिन नाम आता है आइन्स्टाइन जैसे किसी एक का। उसी प्रकार साधु बहुत हैं, लेकिन नाम कुछ एक का ही उजागर होता है और जिनका नाम उजागर हुआ है, उनको तो आप अपनी अंगुलियों पर गिन सकते हो। उसी प्रकार ऋषि परंपरा और गुरु परंपरा के जो प्रमुख आचार्य रहे हैं, उनका नाम यहाँ लिया गया है। फिर पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, तोटकाचार्य और सुरेश्वराचार्य की परंपरा में भी जो साधु-महात्मा हुये हैं, उनका भी नाम आता है। हमारी परंपरा का केंद्र है शृंगेरीमठ, और शृंगेरीमठ में रहे सुरेश्वराचार्य। वे हमारे आचार्य हैं और उनकी परंपरा में स्वामी शिवानंद जी और स्वामी सत्यानंद जी जैसी महान् विभूतियों का नाम भी आता है। यह गुरुजनों की एक ऐसी परंपरा है, जो प्राचीन समय से अटूट चली आ रही है।

मैं पुनः याद दिला दूँ कि गुरु उसे कहते हैं जो ब्रह्मतत्त्व का ज्ञानी होता है, जो जगत् का ज्ञानी होता है और जो जीवन का ज्ञानी होता है। गुरु उसको नहीं कहते जो विद्वान् है, गुरु उसको नहीं कहते जो भक्त है, गुरु उसको नहीं कहते जो कथा कहता है। वे सब शिक्षक हैं, जो सिखलाते हैं कि जीवन को कैसे जीना, धर्म क्या है अधर्म क्या है, लेकिन वे ब्रह्मवेत्ता नहीं हैं। वे विद्वान् हो सकते हैं, पर ब्रह्मवेत्ता नहीं हैं। जो ब्रह्मवेत्ता होता है, उसकी चेतना ब्रह्मतत्त्व में

ही हमेशा रमण करते रहती है। रमण महर्षि, आनंदमयी माँ और अन्य उत्कृष्ट योगियों का नाम आपने सुना है। अगर आप उनके जीवन, उनके विचारों और उनके क्रियाकलापों को समझ पायें तो वे एक सामान्य साधु के क्रियाकलाप नहीं थे, बल्कि उनकी चेतना तो हमेशा परमात्मा में ही वास करती थी। प्रत्येक श्वास में वे केवल परमतत्त्व का चिंतन करते थे। जो चौबीस घंटे परमतत्त्व का चिंतन कर सकता है, बिना अपने मन को वहाँ से हटाये, उसे ही गुरु की उपाधि दी जा सकती है।

एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। जब हमारे गुरुदेव रिखिया में एकांतवास करते थे तो उनका संकल्प था कि प्रत्येक श्वास के साथ मंत्र का स्मरण हो। यही उनकी साधना थी, और इसलिए वे कहते थे कि कोई मेरे पास नहीं आएगा। भक्त लोग तो जबरदस्ती दर्शन करने जाते थे यह सोचकर कि हमको उनका एक बार दर्शन हो जाये, उनको हम एक बात कह सकें। उनसे हमारे गुरुदेव हमेशा कहा करते थे कि 'जब तुम आते हो मेरे पास, न चाहते हुए भी, औपचारिकता के कारण मुझे तुमसे एक या दो मिनट मिलना पड़ता है और जितना समय मैं तुम्हारे साथ बिताता हूँ, उतना समय मेरा ध्यान श्वास और मंत्र से हट जाता है। बुरा नहीं मानना, तुम मेरे लिए विघ्न हो, क्योंकि तुम मेरी साधना रोक देते हो अपनी भावना के कारण, अपनी परेशानी के कारण। वह तुम्हारे लिए जरूरी हो सकती है, लेकिन साधना तो मेरी भंग हो रही है।' इसलिए वे कहते थे, 'फिर मत आना। जब तक मैं साधनारत हूँ, मेरे पास मत आना, क्योंकि साधना के अपने नियम और अनुशासन होते हैं, अपनी व्यवस्था होती है।'

इस दृष्टांत के माध्यम से आपको यही संकेत दे रहा हूँ कि प्रत्येक श्वास के साथ चौबीस घंटे जब परमात्मा का सान्निध्य हमको मिल रहा है, वे मुझमें समाहित हो रहे हैं और मैं उनसे एक हो रहा हूँ, इस अनुभव को केवल एक ब्रह्मवेत्ता योगी ही जानता और समझता है, और वही समझाता भी है, जैसे हमारे गुरुदेव ने समझाया। गुरु वही होता है, जो जीवन, जगत् और परमात्मा के रहस्य को भली-भाँति जानता है। वह जानता है कि लीला क्या है, सत्य और असत्य क्या है, मिथ्या और भ्रम क्या है, कौशलता और उत्तमता क्या है, सहजता और सकारात्मकता क्या है। हमलोग तो नकारात्मकता में जीते हैं, लेकिन गुरुजन हमें नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाने के लिए शिक्षा देते हैं, और सभी गुरुओं के जीवन में यही सत्य दिखाई देता है।

– 22 जुलाई 2024, पादुका दर्शन

गुरु की खोज

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

गुरु की खोज प्रारम्भ करने के पूर्व आपको अच्छी तरह यह समझ लेना चाहिए कि आप किन उद्देश्यों से इस हेतु अभिप्रेरित हैं। आप उनसे अपनी किन आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा रखते हैं? क्या आप अन्तरात्मा की जागृति की भावना से प्रेरित हैं? क्या आप अपने वर्तमान जीवन में मात्र एक ज्ञानी व्यक्ति के ज्ञान और अनुभव को शामिल करना चाहते हैं? क्या आप शारीरिक या मानसिक रोग, बेरोजगारी अथवा आर्थिक समस्याओं से उत्पन्न गहरी निराशाओं से मुक्ति पाने हेतु गुरु की खोज कर रहे हैं?

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि आप किस प्रयोजन से गुरु की खोज करना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में पर्याप्त आत्मचिन्तन होना चाहिये। आप यह बात याद रखें कि जैसी आपकी आवश्यकता होगी वैसे ही गुरु आपको मिलेंगे। यदि आपकी गुरु की आवश्यकता सच्ची होगी तो आपकी खोज के परिणामस्वरूप सही व्यक्ति अवश्य मिल जाएँगे।

उदाहरण के लिये, आप आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम लक्ष्य के अनुभव की इच्छा कर सकते हैं तथा ऐसा सोच सकते हैं कि आप इस हेतु

तैयार हैं। किन्तु वास्तव में आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से आप निम्नतम स्तर पर स्थित हो सकते हैं। ऐसी स्थिति में आप उच्चतम स्तर से ही यात्रा कैसे प्रारम्भ कर सकते हैं? मान लीजिये कि किसी दिन जोश में आकर आप शल्यचिकित्सक बनने का निश्चय कर बैठते हैं, ऐसी स्थिति में क्या यह व्यावहारिक होगा कि आप एक दक्ष विशेषज्ञ के पास जाकर उनसे निवेदन करें कि वे तत्क्षण आपको शल्यचिकित्सा का प्रशिक्षण देने लगें। वे कभी ऐसा नहीं करेंगे। वे आपको सबसे पहले मौलिक शरीर-रचना विज्ञान सीखने की सलाह देंगे।

आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये ऐसी घटना एक सामान्य बात है। कभी-कभी वे अति उत्साहित हो जाते हैं तथा गुरु खोजने हेतु शीघ्रता से ऋषिकेश या अन्य स्थानों की ओर प्रयाण का निर्णय ले लेते हैं। परिणामस्वरूप अनेक दुर्घटनाओं को भोगकर तथा बुरी तरह निराश होकर वापस लौटते हैं। अपनी आध्यात्मिक विकास यात्रा में गलतियों, दुर्घटनाओं एवं पश्चात्तापों से बचने के लिये आपको धीरे-धीरे क्रमबद्ध रूप से अपनी दिशा तथा आवश्यकताओं का निर्धारण करना होगा।

हो सकता है कि कुछ अर्से से आप दुःखों एवं कठिनाइयों से गुजर रहे हों। जब हम कठिन परिस्थितियों के प्रभाव में होते हैं तो प्रायः हमारे अन्दर कुछ जग उठता है और हम जीवन को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने लगते हैं। संसार के प्रति हम एक निःस्पृह, तटस्थ भाव का अनुभव करते हैं। हमें प्रत्येक वस्तु में क्षणभंगुरता का अनुभव होने लगता है। इसलिए हम उन सभी वस्तुओं के प्रति उदासीन रहने लगते हैं जिनके लिये कभी हममें तीव्र ललक हुआ करती थी। ऐसे विचारों के प्रभाव में आकर हम गुरु खोज सकते हैं और संन्यास भी ले सकते हैं। किन्तु अपने क्षणिक मानसिक सदमे से उबरते ही हम पाते हैं कि हमारी इच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ एवं वासनाएँ त्वरित गति से वापस आ रही हैं। तब हम अनुभव करते हैं कि यदि हम अपनी आवश्यकताओं का ठीक से विश्लेषण करते तो गुरु की खोज उपर्युक्त लक्ष्यों से निर्धारित होती, अन्य से नहीं।

भौतिक पदार्थों की क्षणभंगुरता से सम्बन्धित विचार वैसे साधकों के मन में भी उठते हैं जो वास्तव में अपनी इच्छाओं का त्याग कर गुरु के निकट रहना चाहते हैं। परन्तु ये विचार किसी विशेष परिस्थिति के परिणाम नहीं होते, बल्कि ये तो जीवन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति उनकी गहन समझदारी से

उत्पन्न होते हैं। एक बार निर्णय ले लेने के बाद कठिनाइयों का सामना होने पर पीछे मुड़ने या भटकने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

इसलिए प्रारम्भ में ही आप अच्छी तरह समझ लें कि गुरु में आप क्या खोज रहे हैं। इस बात को समझने के लिए पूर्ण सावधानी से काम लेना आवश्यक है। गुरु के निर्धारण में आपके प्रयोजन तथा सजगता के स्तर की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। प्राथमिक पाठशाला का विद्यार्थी किसी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर से सीखने की आशा कदापि नहीं कर सकता। उसे एक ऐसा शिक्षक प्राप्त करना होगा जो उसकी अपनी सजगता के स्तर से सम्बन्ध स्थापित कर सके। एक आध्यात्मिक साधक के लिए भी यही बात लागू होती है।

सत्संग और साधना

गुरु की खोज करने वाले साधक के लिये सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह स्वयं को शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक रूप से तैयार करे। इस हेतु सर्वोत्तम उपाय यह है कि वह आध्यात्मिक विषयों पर होने वाले सत्संगों, व्याख्यानों एवं वार्तालापों में अधिकाधिक भाग ले। वह ऐसे ज्ञानी पुरुषों की खोज में अवश्य रहे जो शास्त्रों द्वारा उद्घाटित जीवन के रहस्यों तथा मौलिक सत्यों की व्याख्या कर सकें और उसे आत्मनिरीक्षण हेतु प्रेरित कर सकें।

ज्ञानी जनों से सत्संग के इस अभ्यास को आप अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना सकते हैं। जब भी अवसर मिले, आप ऐसे लोगों के सान्निध्य के लाभ से न चूकें। आपके आध्यात्मिक जीवन के आरम्भ में यह सरलतम एवं सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि जब भी हम सकारात्मकता के सम्पर्क में आते हैं तो हम उसी दिशा में अपना विकास करने हेतु प्रेरित होते हैं।

सत्संग में शामिल होने के साथ-साथ आपको कुछ व्यक्तिगत साधना या यौगिक अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। कुछ समय के बाद आप पायेंगे कि आपकी समझ अधिक स्पष्ट एवं आपके निर्णय अधिक सटीक हैं। अपनी सीमाओं, सामर्थ्यों एवं कमजोरियों के बारे में आपकी जानकारी बेहतर होगी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह होगी कि आपके सामने आपका लक्ष्य या उद्देश्य स्पष्ट होने लगेगा। इसमें कुछ समय लग सकता है। आप प्रतीक्षा करें। इस सन्दर्भ में आपकी सफलता अपने अभ्यास के प्रति लगन तथा नियमितता

पर निर्भर करेगी। आपकी समझदारी और अन्तर्दृष्टि धीरे-धीरे सशक्त होगी और अन्त में, समय आने पर, आप अपने गुरु को पहचानने में समर्थ हो जायेंगे।

एक बात पर जोर देने की आवश्यकता है। सीमित सजगता के साथ गुरु का चयन नहीं किया जाना चाहिये। जब तक आपकी सजगता आशंकाओं, दुःखों, चिन्ताओं तथा सन्देहों से मुक्त न हो जाए तब तक गुरु का वरण करने में विलम्ब ही श्रेयस्कर है। इनके प्रभाव में निर्णय लेने में निश्चित रूप से गलती होगी। अनेक बार आप ऐसे लोगों से मिलते हैं जिन्हें सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं। वे आपको क्षणिक अनुभव प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। ऐसी स्थिति में आप अपनी भावनाओं के वशीभूत होकर भ्रमित हो जाते हैं। ऐसे लोगों के साथ आप गहरा लगाव भी अनुभव कर सकते हैं, लेकिन वे निश्चित रूप से वैसे गुरु नहीं हैं, जिनकी आप खोज कर रहे हैं।

आप ऐसे लोगों को उनके असली रूप में देखने का प्रयास अवश्य कीजिए। अपना वास्तविक गुरु पाने के पूर्व आपको ऐसे अनेक अनुभवों से गुजरना पड़ सकता है। आपको ऐसे अनुभवों के सकारात्मक प्रभावों को ग्रहण करना चाहिए। लेकिन आप वास्तविक रूप से तब तक प्रतिबद्ध न हों जब तक कि आप पूर्णतः आश्वस्त न हो जाएँ। व्यक्ति इस सम्बन्ध में तभी निःसंशय और तैयार हो सकता है जब उसकी समझ शुद्ध और बहुत हद तक स्पष्ट हो जाए।

गुरु प्राप्त करने हेतु उन्मत्त होने या स्नायविक विकारों से ग्रस्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप सत्संग और साधना द्वारा अपने को तैयार कीजिए। दक्ष योग शिक्षक आपको उपयुक्त यौगिक क्रियाओं के बारे में सलाह दे सकते हैं। इसी प्रकार ज्ञानी लोगों के सत्संग में भाग लेने के भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। ज्योंही आपकी सजगता बढ़ेगी और समझदारी गहरी होगी, आपको अपना मार्ग और गुरु अनायास ही मिल जाएगा।

गुरुओं की श्रेणियाँ

जिस प्रकार एक शिष्य के लिये विकास के अनेक स्तर होते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न गुरु भी विकास के अलग-अलग स्तरों पर होते हैं। ज्ञानी गुरु धर्मशास्त्रों में निष्णात होते हैं। योगी गुरु सभी प्रकार के योगाभ्यासों में दक्ष होते हैं तथा पूर्ण कुशलता से उनकी शिक्षा दे सकते हैं। तान्त्रिक गुरु उन तरीकों में निपुण होते हैं जिससे वे आर्थिक या अन्य कठिनाइयों का उन्मूलन कर सकते हैं।

यदि आप उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं और इस हेतु सर्वस्व त्यागने के लिये तैयार हैं, तो आप निश्चित रूप से एक ब्रह्मनिष्ठ गुरु की खोज करें। ब्रह्मनिष्ठ गुरु सदैव ब्रह्म या परम सत्य में लीन रहते हैं। ऐसे गुरु दुर्लभ होते हैं। यदि आपको ऐसे गुरु मिल जाएँ और आप उनके गुणों को पहचानने में सफल हो जाएँ तो आपको समझना चाहिये कि आप बहुत भाग्यवान् हैं। हो सकता है कि आप ऐसे महापुरुषों से कई बार मिल चुके हों, पर अपनी सन्देह और दम्भ भरी बुद्धि के कारण आप उन्हें न पहचान सके हों। वे अपनी पीठ पर कोई विज्ञापन लगाकर नहीं चलते कि मैं ब्रह्मनिष्ठ हूँ, मेरा अनुसरण करो। सच्चे ब्रह्मनिष्ठ गुरु सभी प्रकार के आडम्बरों से बचते हुए सरलतम जीवन बिताते हैं।

यहाँ एक बात को स्पष्ट करना आवश्यक है। गुरु मूलतः दो प्रकार के होते हैं – एक को परम तत्त्व का ज्ञान होता है और दूसरे को उसका ज्ञान और अनुभूति, दोनों होते हैं। आपको कैसे गुरु की आवश्यकता है इसका निर्णय आपको स्वयं करना है। यदि आपको सिर्फ ज्ञान चाहिये तो आप एक ज्ञानी गुरु की खोज करें। किन्तु यदि आप अनुभूति प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको एक ब्रह्मनिष्ठ या तान्त्रिक गुरु की शरण में जाना होगा।

गुरु और शिष्य का पारस्परिक सम्बन्ध

प्रायः पाया जाता है कि अपने विकास के स्तर या अपनी सही आवश्यकताओं का निर्धारण करना शिष्य की क्षमता के बाहर की बात होती है। ऐसा होने पर भी उसके मन में गुरु प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसी स्थिति में सर्वोत्तम उपाय यह है कि वह एक ज्ञान-सम्पन्न गुरु के पास जाए। वे आपके विकास के स्तर को समझने तथा आपके आवश्यकतानुसार आपका मार्गदर्शन करने में सक्षम होंगे। यदि आप उनमें विश्वास करते हैं तो सदैव याद रखें कि उनका आदेश-निर्देश आपके लिये अन्तिम सत्य है। वे आपको संन्यास लेकर आश्रम में रहने की आज्ञा दे सकते हैं या साधना से सम्बन्धित निर्देश देकर घर वापस भेज सकते हैं। आश्रम में आपको बहुत उत्तरदायित्त्वपूर्ण कार्य दिया जा सकता है या सिर्फ यह कहा जा सकता है कि दिन-रात सब्जी काटिये। इनमें से किसी भी कार्य से शिष्य के मार्ग में न तो अवरोध होना चाहिये और न उसके अहंकार में ही वृद्धि होनी चाहिये। केवल गुरु जानते हैं कि उसे कोई विशेष कार्य क्यों दिया गया है। कुछ दिनों के बाद शिष्य को पता चलेगा कि गुरु उसकी आंतरिक प्रकृति को, अन्य किसी व्यक्ति की तुलना में बेहतर ढंग से समझ सके हैं।

प्रायः अपने पूर्व जीवन में शिष्य एक गुरु के साथ रह चुका होता है, किन्तु वर्तमान जीवन में उसे गुरु से किसी सम्पर्क के बिना कुछ अनुभवों से गुजरना होता है। इन अनुभवों से गुजरने के बाद गुरु के प्रति उसकी उत्कण्ठा बढ़ने लगती है। यह स्थिति कुछ हद तक भूख से रोते हुए बच्चे के समान है। माँ उसका रोना सुनती है, किन्तु वह जानती है कि उसे दूध पिलाने का यह उचित समय नहीं है। इसी प्रकार आपके जीवन में गुरु के अभ्युदय का भी एक सही समय होता है। वह मुहूर्त्त आते ही आपको गुरु मिल जायेंगे।

ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जब गुरु शिष्य की स्वप्नावस्था या ध्यानावस्था में प्रकट होते हैं। तब शिष्य उस व्यक्ति की खोज करता है जिसे उसने इस अवस्था में देखा है। महर्षि अरविन्द की प्रमुख शिष्या 'माँ' को गुरु का दर्शन स्वप्न में ही हुआ। उन्होंने देखा कि महर्षि उन्हें अपनी ओर आने के लिये इशारा कर रहे हैं। बाद में वे अरविन्द आन्दोलन का बहुत महत्त्वपूर्ण अंग बन गयीं।

कभी-कभी गुरु को भी किसी विशेष शिष्य को खोजने या प्राप्त करने का आदेश मिलता है, किन्तु ऐसा मुख्यतः विकसित चेतना वाले शिष्यों के सम्बन्ध में ही होता है जिन्हें किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति करनी होती है। रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानन्द की कहानी तो हम सभी जानते ही

हैं। रामकृष्ण अपने शिष्य की खोज में थे। जब वे कलकत्ता के एक कुलीन युवक, नरेन्द्र से मिले तो तत्क्षण समझ गए कि वे ही उनके महान् लक्ष्यों को पूरा करेंगे। नरेन्द्र ही आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द हुए। उन दिनों नरेन्द्र पूर्णतः बुद्धिवादी थे। वे रामकृष्ण की अनेक बातों तथा क्रिया-कलापों से सहमत नहीं होते थे। उनके विचार तथा प्रतिक्रियाएँ उनकी बुद्धिवादिता से प्रभावित थीं। इसके बावजूद उनका हृदय सम्मोहित होकर रामकृष्ण की तरफ खिंचा चला जाता था। युवक नरेन्द्र इस रहस्य को नहीं समझ पाते थे, इसलिए उन्हें अत्यधिक मानसिक द्वन्द्व से गुजरना पड़ता था। धीरे-धीरे परिस्थितियाँ ऐसा रूप लेती गयीं कि अन्त में नरेन्द्र गुरु के आगे पूरी तरह समर्पित हो गए। आगे की कहानी तो एक इतिहास बन गई।

हमें स्वीकार करना होगा कि ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का निर्धारण उच्च शक्तियों द्वारा होता है। उचित समय आने पर ये घटनाएँ अपने आप एक निश्चित स्वरूप लेने लगती हैं। आप स्वतः अपने गुरु के पास पहुँच जाते हैं। आप जैसे ही उन्हें देखते हैं, आपका हृदय, आपकी आत्मा उनसे जा मिलती है। उस समय आपके सारे संदेह निर्मूल हो जाते हैं। दो हृदयों के मिल जाने के उपरान्त सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। जब हम बुद्धि के क्षेत्र में रहते हैं तभी प्रश्नों, सन्देहों एवं विभिन्न प्रकार की कुण्ठाओं से परेशान होते हैं।

मैंने भी अपने जीवन में गुरु की खोज की है। मैं भी ऐसे प्रश्न किया करती थी। मैं सोचा करती थी कि क्या वे मुझे मिलेंगे, क्या मैं उन्हें पहचान पाऊँगी। चूँकि मेरी खोज बुद्धि पर आधारित थी, इसलिए मैं भी ऐसे प्रश्नों से परेशान रहती थी। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि ऐसे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है – प्रश्न करना ही बन्द कर दीजिए। अपने अन्दर झाँकिए, अपनी साधना को तीव्र कीजिए। लगनशील साधक बनिए। ऐसा होने पर संसार की कोई भी शक्ति आपको आपके गुरु से अलग नहीं रख सकेगी।

अन्त में हम कह सकते हैं कि गुरु प्राप्त करने की कोई निश्चित पद्धति नहीं होती। यह कोई ऐसी चीज नहीं जिसे हम बाजार में खरीद सकें। गुरु की कोई सटीक परिभाषा नहीं दी जा सकती। वे हमारे सीमित, परम्परागत शब्दों से परे होते हैं। हमें तो उनकी आत्मा से संचार स्थापित करना है। ऐसा संचार शब्दों, इन्द्रियों या बुद्धि पर आधारित नहीं होता। इसलिए हम मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक स्तर पर स्वयं को तैयार करें और कुछ समय बाद, जब गुरु मिलेंगे, हम उन्हें जरूर पहचान लेंगे।

ध्यान की उपयोगिता

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

ध्यान मन की वह स्थिति है, जहाँ प्रत्यक्ष ज्ञान के विषय या विषयासक्त विचार नहीं रहते। जैसे नदी में जल का सतत् प्रवाह होता है, वैसे ही मन में केवल एक वृत्ति रहती है। ध्यान का अर्थ है ईश्वरीय चेतना के अनंत प्रवाह को बनाये रखना। निरंतर एक ईश्वर या आत्मा का विचार। यह एक बर्तन से दूसरे बर्तन में बिना किसी रुकावट के तेल के प्रवाह की तरह है। मन से सभी विषयानुगत विचारों को निकाल दिया जाता है। मन दिव्य विचारों, दैवी महिमा तथा दैवी उपस्थिति से भरा रहता है।

एकाग्रता के अभ्यास के पश्चात् ध्यान की अवस्था आती है। योग की सीढ़ी में यह सातवाँ कदम है। योगी इसे ध्यान कहते हैं, ज्ञानी-जन निदिध्यासन तथा भक्त भजन कहते हैं। ईसा मसीह कहते हैं, 'तुम अपने को खाली करो, मैं तुम्हें भर दूँगा।' महर्षि पतंजलि की भी यही शिक्षा है, 'चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है।' मन को शून्य अवस्था में लाने की क्रिया बेशक एक कठिन अनुशासन है, परन्तु निरन्तर अभ्यास से सफलता मिलेगी, इसमें कोई संशय नहीं है।

ध्यान की आवश्यकता

अमरत्व और परमानंद पाने के लिये ध्यान ही एकमात्र रास्ता है। जो लोग एकाग्रता और ध्यान का अभ्यास नहीं करते, वे आत्मा के कातिल हैं। बुद्धिमान् साधक निरंतर ध्यान की तेज तलवार से अंधकार की ग्रन्थि के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। तब आत्मा का सर्वोच्च ज्ञान अवतरित होता है और आत्मज्ञानी को पूर्ण आन्तरिक प्रकाश प्राप्त होता है। मोक्ष प्राप्त संत को कोई संदेह या भ्रम नहीं होता। कर्मों के सभी बन्धन टूट जाते हैं। इसलिये हमेशा ध्यान में लगे रहो, यह परमानंद के द्वार की कुंजी है। शुरू में यह अभ्यास कठिन और अरुचिकर हो सकता है, क्योंकि प्राय: मन एकाग्रता के विषय से हट जाता है। लेकिन कुछ अभ्यास के पश्चात् यह केन्द्र पर एकाग्र हो जाएगा। आप दिव्य आनन्द तथा शान्ति में डूब जाएँगे।

जिस प्रकार आपको शरीर के लिये भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आपकी आत्मा को प्रार्थना, जप, कीर्तन और ध्यान के रूप में भोजन की आवश्यकता होती है। जैसे समय पर भोजन न मिलने से आप गुस्सा हो जाते हैं, वैसे ही जब आप कुछ समय तक लगातार प्रार्थना और जप का अभ्यास कर लेते हैं, तब यदि आप कभी सुबह या शाम को प्रार्थना न करें, तो आपको बेचैनी-सी होने लगती है। आत्मा के लिये भोजन की आवश्यकता शरीर से अधिक है। इसलिये आपको प्रार्थना, जप और ध्यान का अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए।

ध्यान का फल

गहरे ध्यान से आत्म-नियंत्रण और मानसिक स्थिरता की प्राप्ति होती है। मन को ईश्वर पर एकाग्र कीजिए। आपको दिव्य जीवन का आनन्द प्राप्त होगा।

आप दिव्य गुणों से भर जायेंगे। आपको पूर्ण सामंजस्य, निरंतर प्रसन्नता और चिरस्थायी शान्ति का अनुभव होगा। मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान ही वास्तविक राज-मार्ग है। यह सभी दु:खों और क्लेशों को समाप्त कर देता है। यह दु:ख के कारण को ही नष्ट कर देता है। यह एकत्व की अनुभूति प्रदान करता है। यह योगी के लिए एक दिव्य सीढ़ी है, जो उसे सर्वोच्च चेतना की अवस्था तक पहुँचाती है। ध्यान के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है।

नियमित ध्यान अंतर्ज्ञान के द्वार खोलता है, मन को शान्त और स्थिर बनाता है। यदि कोई ध्यान योग के मार्ग का व्यवस्थित रूप से अनुसरण करता है, तो उसके सभी संशय अपने आप मिट जाते हैं। यदि आप रात में घड़ी को चाबी देते हैं, तो यह बिना रुके चौबीस घण्टे चलेगी। इसी प्रकार आप सुबह चार बजे एक या दो घण्टे ध्यान करें, तो आप पूरे दिन शान्ति से काम कर सकेंगे। आपका पूरा व्यक्तित्व आध्यात्मिक सपन्दनों से ओत-प्रोत हो जायेगा।

दु:ख का अनुभव तभी तक होता है, जब तक मन का सम्बन्ध शरीर से रहता है। यदि आप मन को शरीर से अलग कर सकें, तो कहीं कोई कष्ट नहीं रहेगा। आत्मा आनन्द की प्रतिमूर्ति है। यदि आप ध्यान द्वारा मन को शरीर तथा विषयों से हटाकर आत्मा में स्थिर कर दें, तो सभी कष्टों का अन्त हो जाएगा।

वास्तविक शिथिलीकरण ध्यान के समय ही होता है, जब मन आत्मा में विश्राम करता है। कार्य में परिवर्तन विश्राम प्रदान कर सकता है। निष्क्रिय बैठने और मन को क्रुद्ध हाथी की तरह बिना सोचे-समझे इधर-उधर घूमने देने या हवाई किले बनाने से विश्राम नहीं मिलता।

जो व्यक्ति ध्यान में मन को स्थिर नहीं कर सकता, उसे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि आप आधा घण्टा ध्यान कर सकें, तो आपके ध्यान की शक्ति आपको एक सप्ताह तक शान्तिपूर्वक जीवन के संघर्ष का सामना करने का सामर्थ्य प्रदान करेगी।

नियमित रूप से ध्यान करने वाले योगी का व्यक्तित्व बहुत आकर्षक और कांतियुक्त होता है। जो लोग उसके सम्पर्क में आते हैं, वे उसकी मधुर आवाज, प्रभावशाली वाणी, चमकदार आँखों, उज्ज्वल स्वरूप, मजबूत स्वस्थ शरीर, अनुकरणीय व्यवहार, नेक गुणों तथा दिव्य स्वभाव से प्रभावित होते हैं। लोग उससे प्रसन्नता, शान्ति और शक्ति प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार ध्वनि तरंगें आकाश में विचरण करती हैं, उसी प्रकार ध्यान का अभ्यास करने वाले की आध्यात्मिक तरंगें दूर तक जाती हैं तथा हजारों लोगों को शान्ति

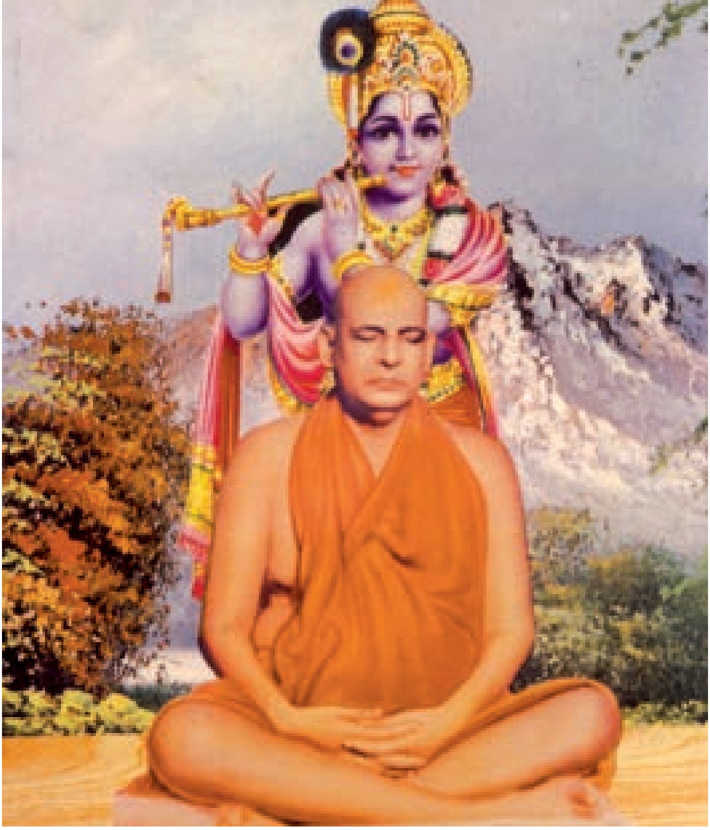

और शक्ति प्रदान करती हैं। अगर आप श्रीकृष्ण, भगवान शिव या आत्मा पर केवल पाँच मिनट तक भी अपने मन को केन्द्रित कर सकें, तो आपका मन सत्त्व गुण से भर जाएगा।

आप ध्यान द्वारा प्राप्त आनन्द की तुलना विषयों से प्राप्त अस्थायी सुखों से करें, तो पायेंगे कि यह विषयों से प्राप्त सुखों की अपेक्षा दस हजार गुणा अधिक श्रेष्ठ है। ध्यान कीजिए और आनन्द का अनुभव कीजिए, तभी आप इसका मूल्य समझ पायेंगे।

यदि साधक अपने गुरु पर ध्यान करता है, तो इससे दोनों के बीच एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। शिष्य के विचारों के उत्तर में गुरु उसके भीतर अपनी शक्ति, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द का संचार करता है। शिष्य अपने विश्वास की मात्रा के अनुपात में गुरु से ग्रहण करता है। जब भी शिष्य गंभीरता से अपने गुरु पर ध्यान करता है, गुरु वास्तव में अनुभव करता है कि प्रार्थना की एक धारा या शुद्ध विचार उसके शिष्य से आ रहे हैं और उसके हृदय को छू रहे हैं।

ध्यान द्वारा आध्यात्मिक शक्ति, शान्ति, नये उत्साह और बल की प्राप्ति होती है। यह सभी मानसिक बलवर्द्धक औषधियों में उत्तम है। ध्यान से सशक्त तथा शुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं। विचारों में स्पष्टता आती है और उलझन समाप्त हो जाती है। नियमित ध्यान से धीरे-धीरे मन की चंचलता दूर हो जाती है। ध्यान का अभ्यास चिड़चिड़ाहट को दूर करता और मानसिक शान्ति लाता है।

प्रात: 3.30 से 5.30 का समय ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है। इस समय अच्छी नींद के पश्चात् मन तरोताजा, शान्त और शुद्ध होता है तथा ध्यान के लिये तैयार रहता है। मन में सत्त्व की प्रधानता होती है। वातावरण में भी इस समय सत्त्व की प्रधानता होती है। सुबह-सुबह मन एक कोरे कागज की तरह होता है, सांसारिक चिन्ताओं से प्राय: मुक्त। राग-द्वेष की धारा ने अभी इसमें प्रवेश नहीं किया होता। इस समय मन को चाहे जिस दिशा में मोड़ा जा सकता है, दिव्य विचारों से ओत-प्रोत किया जा सकता है।

योगी, परमहंस, संन्यासी तथा हिमालय के ऋषि अपना ध्यान इसी समय आरम्भ करते हैं और अपनी तरगों को पूरे विश्व में सम्प्रेषित करते हैं। यदि आप ब्रह्ममुहूर्त के समय ध्यान करें तो उनकी आध्यात्मिक तरंगों से आपको बहुत लाभ होगा। इस समय बिना किसी प्रयास के अपने आप ध्यान लगेगा। यदि इस समय का उपयोग दैवी चिन्तन में न कर आप खर्राटे लेते हैं, तो आपकी बहुत अधिक आध्यात्मिक क्षति होगी।

प्रात: और संध्या का समय ध्यान के लिये बहुत उपयुक्त है। इस समय सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह आसानी से होता है। उठने के पश्चात् नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सबसे पहले ध्यान तथा जप करें। यह महत्त्वपूर्ण है। इसके पश्चात् आसन तथा प्राणायाम करें और गीता या अन्य किसी धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन करें।

ध्यान के लिये एक अलग कमरा होना चाहिए। किसी अन्य को इस कमरे के अन्दर मत आने दीजिए। इसे पवित्र रखिये। यदि अलग कमरा रखना सम्भव न हो तो कमरे के एक कोने को ध्यान के लिये चुन लीजिए तथा वहाँ पर्दा डाल दीजिये। कमरे को प्रेरणा देने वाले महान् संतो, साधुओं, पैगम्बरों तथा जगत् गुरुओं की तस्वीरों से सजाइये। अन्दर प्रवेश करने से पहले नहा लीजिए या हाथ, मुँह और पैर धो लीजिये। अपने इष्ट के सामने आसन पर बैठ जाइये, कुछ भजन गाइये या गुरु स्तोत्र का पाठ कीजिये। फिर जप, एकाग्रता तथा ध्यान का अभ्यास कीजिये। ईश्वर करे आप सब नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करें और अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त करें!

व्यावहारिक ध्यान

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

प्रत्येक व्यक्ति को दो चीज़ों को ध्यान में रखना चाहिए। पहला, नित्यप्रति पन्द्रह मिनट आसन करना चाहिए। बूढ़ों को भी करना चाहिए, बूढ़ों को तो बल्कि ज़रूर करना चाहिए। मैं तो अस्सी से ऊपर हैं, 1923 का मॉडल हूँ, पर अपना पन्द्रह मिनट आसन कर ही लेता हूँ। दूसरी चीज़ भूलना नहीं, रोज़ सवेरे और रात को पाँच मिनट एकचित्त होकर अपने गुरुजी के द्वारा दिया हुआ मन्त्र जपना। मैंने पन्द्रह मिनट नहीं कहा, केवल पाँच मिनट कहा। अगर तुम कम करना चाहो, तो तीन भी कह सकता हूँ। मनमर्जी से नहीं जपना, मन्त्र गुरु-मुख होता है, मन-मुख नहीं।

मानसिक एकाग्रता

सब विद्याओं में गुरु की आवश्यकता है, डॉक्टरी, क्रिकेट और हॉकी के लिए भी गुरुजी चाहिए, तो योगविद्या में भी गुरु की आवश्यकता है। गुरु-मंत्र जपते समय अपने मन में यही सोचना चाहिए कि इतनी देर मैं दुनिया के बारे में न सोचूँ, एकाग्रचित्त रहूँ। यह आवश्यक बात बोल रहा हूँ यहाँ। मन्त्र ज़रूरी नहीं

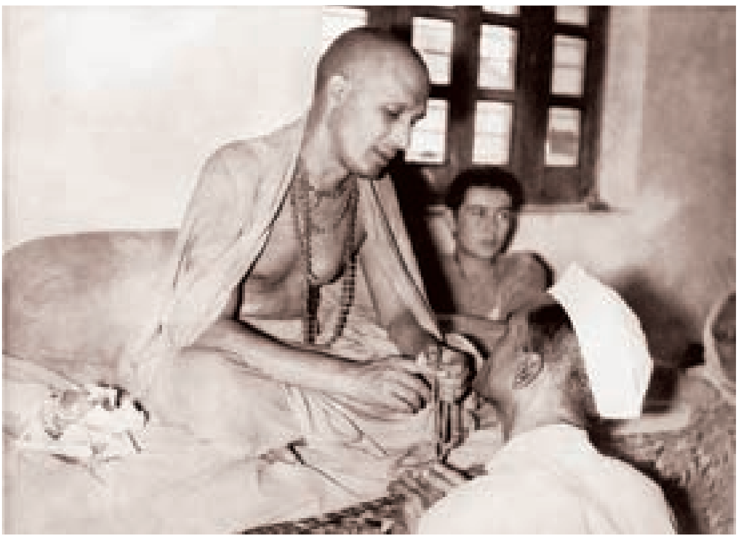

है, मन्त्र आधार है। असली चीज़ है मन को एकाग्र करना। मन को एकाग्र करने का मतलब होता है जीवन की 'मास्टर चाबी' अपने हाथ में लेना। चोर हो, बदमाश हो, सन्त हो, महात्मा हो, व्यापारी हो, बूढ़ा हो, सदाचारी हो, ब्रह्मचारी हो, व्यभिचारी हो, कोई फर्क नहीं पड़ता, अगर चित्त थोड़ी देर के लिए शून्य में चला जाए। शून्य माने, जहाँ सांसारिक चेतना न रहे। और इस शून्य को तीन बार पाना पड़ता है, एक बार नहीं। यह जो अभी तुमको बता रहा हूँ, यह पहले शून्य की बात है। ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, मन में और कुछ नहीं है, उसको कहते हैं प्रथम शून्य। कबीरदास कहते हैं कि जिस परम चीज़ को तुम पाना चाहते हो, वह तीन शून्य के पार है – *शून्य शून्य शून्य के पारा*। और इसी पर एक सन्त ने कहा है – *जागृत स्वप्न सुषुप्ति जानी, तुरीया तार मिलाया* – जाग्रत अवस्था में एक शून्य की प्राप्ति करो, स्वप्न अवस्था में दूसरे शून्य की प्राप्ति करो, सुषुप्ति अवस्था में तीसरे शून्य की प्राप्ति करो – ये तीन शून्य हैं। तब चौथी अवस्था आती है।

अब इसको और अच्छी तरह से समझाता हूँ। अभी तुम जिस अवस्था में हो – आँखें खुली हैं, दिमाग चल रहा है, दिमाग का सम्पर्क पाँच इन्द्रियों से हो रहा है, इस अवस्था को कहते हैं जाग्रत अवस्था। पाँच इन्द्रियाँ कौन-सी हैं? कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नाक। इनके पाँच विषय हैं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। जब तक तुम लोगों को इन पाँच विषयों की जानकारी रहती है, उस अवस्था को कहते हैं जागृति। जागृति की इस अवस्था में इन पाँचों से थोड़ी देर के लिए पूरी तरह सम्बन्ध-विच्छेद करना पड़ता है। थोड़ी देर का मतलब पाँच मिनट बहुत हैं। बन्दूक की गोली ठीक लग जाए, तो एक काफी है। एक क्षण के लिए भी अगर तुम शून्य अवस्था में चले जाओ, तो गज़ब हो जाएगा, क्योंकि हमने सुना है हमारे अन्दर परमात्मा है।

इस घट अंतर बाग-बगीचे, इसी में सिरजनहारा।
इस घट अंतर सात समुन्दर, इसी में नौ लख तारा॥
इस घट अंतर पारस मोती, इसी में परखनहारा।
इस घट अंतर अनहद गरजै, इसी में उठत फुहारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसमें साईं हमारा॥

दिखता तो कहीं नहीं है। डॉक्टर साहब देखते हैं, तो कुछ दिखाई नहीं देता है – सरजनहारा नहीं दिखाई देता, सात समुन्दर भी नहीं दिखाई देते,

हाँ, रक्त-मज्जा-हड्डियाँ दिखाई देती हैं। और यहाँ महात्मा कहता है कि इस घट भीतर नौ लख मोती, कोई पन्ना, कोई हीरा। इस घट भीतर सात समुन्दर, कोई मीठा, कोई खारा। इस घट भीतर बैठा है सरजनहारा। अवधु अंधाधुन्ध अंधियारा। यह कबीर का वचन है। लेकिन आपको तो अन्दर कुछ दिखाई नहीं देता है। सवाल यह उठता है कि आपको क्यों दिखलाई नहीं देता। इसलिए दिखाई नहीं देता कि आपकी आँख नहीं है। बिना आँख के वस्तु नहीं दिखती, बिना बुद्धि के विचार नहीं दिखता। बिना सूक्ष्मदर्शी के कीटाणु नहीं दिखते।

हर वस्तु की जानकारी के लिए उसका संवेदक होना चाहिए। संवेदक रेडियो तरंगों को पकड़ता है, लेसर किरणों को पकड़ता है, आणविक विकिरण को पकड़ता है, ये चीजें दिखायी तो नहीं देतीं। उसी तरह से जो चीज़ दिखाई नहीं देती, वह चीज़ नहीं है, ऐसा नहीं बोलना। जो चीज़ दिखायी नहीं देती, परन्तु सन्त-महात्माओं ने कहा है कि है, और तुम बोलते हो नहीं है, इसका मतलब है कि तुम्हारे पास आँख नहीं है। उस आँख को खोलने के लिए एकाग्रता ही रास्ता है। उसी रास्ते से तुम अन्दर जा सकते हो। अन्दर जाने का कोई दूसरा रास्ता नहीं है। मंदिर उसका रास्ता नहीं है, मस्जिद उसका रास्ता नहीं है, गिरजाघर उसके रास्ते नहीं हैं, बाइबिल उसका रास्ता नहीं है, गीता उसका रास्ता नहीं है, रामायण उसका रास्ता नहीं है। एक ही रास्ता है उसका – केवल एक क्षण के लिए एकाग्र हो जाओ।

बहुत देर चित्त की वृत्ति को एकाग्र नहीं करना। यह चेतावनी दे रहा हूँ तुम लोगों को, खतरे का संकेत। बहुत देर जो चित्त की वृत्ति को एकाग्र करने की कोशिश करते हैं, घण्टा-डेढ़ घण्टा, उनके मस्तिष्क में विषाद आना शुरू होता है। इसलिए तुमने देखा होगा, जितने लड़के अच्छे नम्बर पर पास होते हैं, 90-95% लाते हैं, बहुत होशियार रहते हैं, सबकी खोपड़ी डूबी हुई रहती है, क्योंकि जो लड़का बहुत होशियार रहता है, उसकी चेतना की एकाग्रता उच्च होती है। अतः एकाग्रता के लिए गुरुजी का बताया हुआ जो मन्त्र होता है, पाँच मिनट वाला, उतना ही करो।

दिन में किसी भी समय ध्यान लगाने या एकाग्र होने का प्रयास मत करना। पद्मासन लगा लिया और बैठ गये। नहीं! क्योंकि जिस एकाग्रता की बात मैं कर रहा हूँ, उसका तीन जगह पर असर होता है। एक असर होता है पूरी शारीरिक प्रक्रिया पर। एनज़ाइम, हॉर्मोन, डी. एन. ए., हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क, इन सब पर इस प्रभाव को देखा गया है। हमारी किताबें पढ़ो। उनमें सब साफ लिखा

है कि एकाग्रता का अभ्यास करने से किस प्रकार से शरीर के अन्दर क्या-क्या परिवर्तन होता है। दूसरा, मनुष्य की ग्रहणशीलता और प्रतिक्रियात्मक स्तर पर भी बहुत बड़ा फर्क पड़ता है। उसकी प्रतिक्रियायें और ग्रहणशीलता बहुत तेज होती है। और तीसरी चीज़, उसकी कार्यक्षमता।

वाह! क्या कार्य रहा स्वामी विवेकानन्दजी का। तीस-बत्तीस साल तक ज़िन्दा रहे। अठारह साल तक तो कॉलेज में ही पढ़ते रहे। कितने साल मिले उनको? दस-बारह साल मिले। पर कमाल कर दिया! क्योंकि उनके कार्य उच्च स्तर के थे। उनके विचार पक्के थे। उन्होंने अपनी योजना बिल्कुल ठीक बनाकर रखी थी। उसके पहले भी एक आदमी पैदा हुआ है, आज से अठारह-उन्नीस सौ साल पहले, आदि शंकराचार्य। आठ साल की उम्र में उसने संन्यास लिया। आठ साल की उम्र में तो बच्चा दूध पीता है। आठ साल की कोई उम्र होती है संन्यास की! ऐसे ही स्वामी निरंजन चार साल की उम्र में मेरे पास संन्यास लेने के लिए आया था, और दस साल की उम्र में विदेश चला गया। यह असाधारण है!

आदि शंकराचार्य ने आठ साल की उम्र में संन्यास लिया और नर्मदा तट पर आए। गोविन्दपाद से उन्होंने दीक्षा ली और कुछ समय वहाँ रहे। उसके बाद वे चले गए व्यास चट्टी और वहाँ उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषदों पर सटीक भाष्य लिखे, जो आज दुनियाभर में उच्च साहित्य माने जाते हैं। दुनिया के किसी भी विश्वविद्यालय में चले जाइये, उन्हें सर्वश्रेष्ठ साहित्य की श्रेणी में रखा गया है। ऐसा भाष्य किसी ने किसी विषय पर नहीं लिखा है। न बाइबिल पर किसी ने भाष्य लिखा, न कुरान पर, न वेदों पर, न उपनिषदों पर। केवल एक आदमी ने ऐसा कार्य किया, जो मात्र सोलह साल का बच्चा था!

मनुष्य के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर

बात चल रही थी, चित्त की वृत्ति को थोड़ी देर के लिए गुरुजी के मंत्र को आधार बनाकर एकाग्र करने की। किसी धर्म, किसी आचार-विचार, किसी कर्म-काण्ड से कोई मतलब नहीं, केवल एक बात। करते जाओ, एक साल, दो साल, तीन साल, चार साल, पाँच साल, दस साल। पन्द्रह-बीस साल तो एम.बी.बी.एस. डॉक्टर बनने में लगते हैं! अन्य विद्याओं में भी इतना समय लगता है। अगर पन्द्रह-बीस साल में अन्दर जाने का दरवाजा ही खुल जाए, तो कितना बढ़िया!

एक बार अन्दर जाना सीखो, पर अन्दर जाना बहुत मुश्किल है। जब रात को तुम सपने में जाते हो तो क्या अपने सपनों को नियंत्रित कर सकते हो? जब तुम अपने विचारों को ही नियंत्रित नहीं कर सकते तो अपने सपनों को कैसे नियंत्रित कर पाओगे? जब तुम अपने स्थूल मन को ही नियंत्रित नहीं कर सकते, तो अपने सूक्ष्म मन को कैसे नियंत्रित करोगे?

मनुष्य के तीन आयाम या शरीर होते हैं – स्थूल, सूक्ष्म और कारण। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति, इनका सम्बन्ध स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से है। निद्रा की अवस्था में जीवात्मा कारण शरीर में चला जाता है। अब निद्रा पर भी तुम्हारा नियंत्रण नहीं है, स्वप्न पर भी तुम्हारा नियंत्रण नहीं है। गुस्सा नहीं करना चाहिए, मगर गुस्सा आ जाता है। इसलिए कि नियंत्रण नहीं है। जिस तरह लंगड़ा आदमी जानता है कि सीढ़ी पर चढ़ा जा सकता है, पर चढ़ नहीं सकता, उसी तरह से हम लोग जानते हैं कि क्रोध को नियंत्रित किया जा सकता है, मगर कर नहीं सकते। मन की जितनी वृत्तियाँ होती हैं, उन पर हमारा नियंत्रण नहीं है।

मैं एक ही विषय को घुमा-फिरा कर बोल रहा हूँ, समझाने की कोशिश कर रहा हूँ। पाँच मिनट एक ही मन्त्र को जपो, बस। यह एकाग्रता जब तुमको प्राप्त हो जायेगी, तब तुमको अन्दर जाने का रास्ता मिलेगा। और जब अन्दर जाने का रास्ता मिलेगा, तब तुम्हारी कार्यक्षमता, तुम्हारी प्रतिक्रियाएँ बहुत सुधरेंगी, चाहे पढ़ने-लिखने में हो, या कहीं पर भी हो। दुनिया में बड़े-बड़े संगीत विशारद हुए हैं, बड़े-बड़े कलाकार हुए हैं। तुमने सुना होगा माइकलएंजेलो के बारे में। वेटिकन की छत में क्या बढ़िया चित्र बनाया है! वह सबेरे चढ़ जाता था पानी की बोतल लेकर, और वहाँ भाड़े पर वह लेट जाता था और बस बनाता जाता था। शाम को नीचे उतरता था। न टट्टी, न पेशाब, न भूख, न कुछ और। वह कौन-सी चीज़ है? यह साधारण नहीं, असाधारण कार्य है।

केवल अध्यात्म मार्ग में नहीं, हर मार्ग में लगन की जरूरत होती है। अध्यात्म मार्ग तो ऐसा मार्ग है जिसपर चलकर तुम बहुत अच्छे संगीतज्ञ, एक अच्छे खिलाड़ी, एक अच्छे योगी, एक अच्छे प्रशासक, एक अच्छे कवि, एक अच्छे लेखक, एक अच्छे नेता और एक अच्छे बदमाश भी बन सकते हो। हाँ! दुनिया में अच्छे लोगों की ज़रूरत है और बदमाशों की भी ज़रूरत है। अगर एक दिन तुम्हारे पास जादू का मन्त्र हो जाए और दुनिया में जितने बदमाश हों, सब मर जायें, तो दुनिया असुरक्षित हो जाएगी। यह दुनिया सत्त्व, रजस् और तमोगुण पर कायम है। जितने बदमाश लोग हैं, तमोगुण प्रधान होते हैं। और जितने काम करने वाले होते हैं, ये नेता-कार्यकर्ता, सब रजोगुणी हैं। सत्त्वगुणी महात्मा तो कहीं हिमालय पर बैठता है या कहीं गौरी-गणेश के कमरे में दिनभर बैठा रहता है! हाँ, हम सत्त्व गुण में हैं। हम रजोगुण में नहीं हैं। हम थे। तमोगुण में कभी थे ही नहीं। इन चीज़ों को मैंने आपके सामने रखा, बहुत चीज़ें न कर सको तो केवल एक छोटी चीज़ पकड़कर जाओ।

प्राचीनकाल में हम लोगों के यहाँ परम्परा थी। अब तो नाम की है। सात साल में उपनयन कराते थे, जनेऊ देते थे और गायत्री मन्त्र पढ़ाते थे। पर अब ऐसा नहीं है। अब ब्राह्मण करते हैं, पर वह भी केवल एक रीति-रिवाज की तरह हो गया है। उसका अर्थ ही नहीं रहा। वैसे तो आप लोगों में बहुत लोग शिष्य बने हुए हैं, उसमें कोई बड़ी बात नहीं है, पर यदि आपका गुरु मन्त्र है, तो आज से पहला कार्य उसको नियम से एकाग्रतापूर्वक जपना शुरू कर दो। दिनभर खूब मौज करना, जहाँ जाना हो जाओ। आज से सोच लो कि रात को पाँच मिनट निकालना है। कितना भी तुम्हारा काम हो, कितनी भी तुम

तकलीफ में हो, कितना भी तुमको बुखार हो, आखिर टट्टी-पेशाब, सब कुछ तो करते ही हो, तो इसको भी कर लिया करो।

गुरुजी ने मेरे को जिस दिन मन्त्र दिया, कहा, 'पाँच माला जपना सबेरे और पाँच माला शाम को।' तो मैंने उनसे पूछा, 'सिर्फ पाँच माला।' उन्होंने कहा, 'हाँ।' मैंने कहा, 'बढ़ाना नहीं है क्या?' उन्होंने कहा, 'रोटी रोज़ बढ़ती जाती है क्या? आज तीन, तो कल चार, फिर पाँच, सात, आठ, नौ, दस, मरते दम तक पाँच सौ!' नहीं, भोजन का एक नियम होता है। आज तीन माला, अगले महीने में दस, फिर पचीस, फिर चालीस, तब तो ज़रूर अपच हो जाएगी। यह बात मान कर चलो। स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, पाँच।' तब हमने कहा, 'स्वामीजी, फिर हमारी उन्नति कैसे होगी?' उन्होंने कहा, 'जो निशाना मारना जानता है, वह एक गोली मारे तो काफी है। जो निशाना मारना नहीं जानता, वह सौ गोलियाँ भी मारे तो कोई मरने वाला नहीं है। तुम सौ माला जपकर क्या करोगे?'

माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख मांहि।
मनुवा तो दस दिशि फिरे ये तो सुमिरन नांहि॥

नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। गुरुजी ने मुझे पाँच माला कहा, पर बाद में मुझे मालूम चला कि पाँच माला कितना मुश्किल होता है। मैं बैठता था। एक माला के बाद मेरा मन डूब जाता था, माला गिर जाती थी, और मेरे को पता नहीं चलता था कि मैंने सुमेरु पार किया है कि नहीं। मेरी तरह अगर आप लोगों ने भी अनुभव किया हो कभी, या आगे कभी अनुभव करोगे, तो आप को पता नहीं चलेगा कि माला पूरी की या नहीं। मुझे याद नहीं है कि मैंने कभी पाँच माला पूरी की या नहीं। बीच में गिर जाती थी, फिर उठाना पड़ता था, फिर सोचता था, कहाँ से शुरू करूँ। फिर पहले से शुरू करते थे। फिर माला गिर जाती थी, क्योंकि जब मन एकाग्र होता है, तब इन्द्रियों का मन से सम्बन्ध कट जाता है। ऊँगली अपने आप खुलने लगती है और माला गिर जाती है। सच्ची बात है, आप मन लगाकर देख लो। उस वक्त केवल मैं, और कुछ नहीं।

मैंने कभी पाँच माला की नहीं, और देखो मेरी उम्र हो गई, फिर भी पाँच ही माला चलती है। मैं पाँच माला के ऊपर जाना ही नहीं चाहता, क्योंकि गुरुजी बोलते थे कि अगर तुम पाँच माला ठीक से करोगे, तो पाँच माला की भी ज़रूरत नहीं है, केवल एक माला करोगे, तो एक माला की भी ज़रूरत नहीं है। और मेरे जीवन में ऐसा ही हुआ।

राजयोग में अंत:करण का प्रबन्धन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

यौगिक दृष्टिकोण से महत् यानि संपूर्ण मन को चार अलग-अलग घटकों या कार्यक्षेत्रों में विभाजित किया गया है। महत् महान् मन है, यह इस शरीर में निहित मन नहीं, बल्कि यह ब्रह्मांडीय मन है। अपने व्यष्टि रूप में यह हमारे भीतर मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में निहित है।

मनस् का कार्य है चिंतन करना, विचार करना, मनन करना। जब आप चिंतन और विश्लेषण कर रहे होते हैं, जब आप अपने विचारों की दुनिया में होते हैं, उस समय मनस् सक्रिय होता है, और यह लगातार सक्रिय रहता है। बुद्धि एक अमूर्त तत्त्व है, पर उस अमूर्त तत्त्व का ठोस स्वरूप विचारों के रूप में देखा और अनुभव किया जाता है। बुद्धि को चित्तवृत्तिनिरोध के माध्यम से वस्तुनिष्ठ बनाया जा सकता है। महर्षि पतंजलि 'चित्तनिरोध' नहीं कहते, वे कहते हैं 'चित्तवृत्तिनिरोध' – उस संबंध को देखिये जो विचार के ठोस रूप का आपकी बुद्धि और चित्त के साथ है। यही अंतर्मौन का अभ्यास है।

आंतरिक मौन

अंतर्मौन का शाब्दिक अर्थ है आंतरिक शांति, और यह राजयोग की विधियों में से एक है। यहाँ इन्द्रिय या मन से संबंधित किसी भी स्थिति, क्रिया या अनुभूति की अस्वीकृति नहीं होती, केवल अवलोकन होता है।

सबसे पहले आप श्रवण की इंद्रिय से जुड़ते हैं। दो इंद्रियाँ सबसे अधिक सक्रिय हैं – दृष्टि और श्रवण। जब आप आँखें बंद करते हैं तो आपके मस्तिष्क में जाने वाली सूचनाओं का अधिकांश भाग रुक जाता है। लेकिन आप सुनना तो बंद नहीं कर सकते। कानों को बंद किए बिना आप ध्वनियों के प्रभाव को कम नहीं कर सकते। इस अभ्यास में अवलोकन के माध्यम से आप एक ऐसी मानसिक स्थिति बनाते हैं जिसमें आप ध्वनियों से विचलित या परेशान नहीं होते। जब दृष्टि और श्रवण की संवेदनाएँ काफी हद तक कम हो जाती हैं, तब विचारों का अवलोकन शुरू होता है।

विचार अवलोकन की प्रक्रिया के अंत में, मन को न केवल हर तरह के विचारों से मुक्त करने का प्रयास किया जाता है, बल्कि उन रंगों, रूपों,

आकृतियों और दृश्यों से भी, जिन्हें आप चिदाकाश के अंधेरे में देखते हैं। वहाँ कुछ भी नहीं होता या हिलता, और यह गहरी थीटा अवस्था में जाने का संकेत है। यह प्रत्याहार की शुरुआत है, जहाँ इंद्रियाँ मस्तिष्क और मन को विचलित नहीं करतीं। आप स्वेच्छापूर्वक यह सुनिश्चित कर रहे हैं कि मन हर समय खाली रहे।

इस अभ्यास से मनस्, जो हमारे जीवन का सबसे सक्रिय सिद्धांत है, समाहित हो जाता है। जब मनस् समाहित होता है, तो बुद्धि भी समाहित होती है। कोई चिंतन या मनन नहीं होता, केवल सजगता होती है। बुद्धि जागरूकता और अनुभूति का रूप लेती है। अगर किसी भी तरह से चित्त नष्ट हो जाए तो जीवन में कोई स्मृतियाँ नहीं रहेंगी और व्यक्ति के लिए जीवित रहना भी मुश्किल हो जाएगा। व्यक्ति जड अवस्था में रहेगा, यह भी नहीं जान पाएगा कि पांच मिनट पहले क्या हुआ था या पांच मिनट बाद क्या होने वाला है, क्योंकि कोई स्मृति या अनुभव बरकरार नहीं रहेगा और विचारों की कोई निरंतरता नहीं होगी।

चित्त को सक्रिय कौन करता है? बुद्धि और मनस्। संबंधित भावनाओं और विचारों के कारण चित्त में जो तरंगें उठती हैं, वे चित्त-वृत्तियाँ हैं, जो बुद्धि और मनस् को प्रभावित करती हैं। राजयोग में प्रत्याहार की प्रक्रिया से जब आप गुजरते हैं, जहाँ आप धीरे-धीरे विक्षेपों को नियंत्रित करते हैं और मन की एक अनुभूति, स्थिति या अवस्था पर केंद्रित होते हैं, तब ध्यान का मार्ग प्रशस्त होता है। श्री स्वामी सत्यानंद जी कहते हैं कि पहले धारणा को सिद्ध किये बिना ध्यान सिद्ध नहीं हो सकता। इसी तरह, अगर प्रत्याहार को पहले सिद्ध नहीं किया

जाता तो धारणा भी कभी पूर्ण नहीं होती। इसलिए अंत:करण में होने वाली गतिविधियों को जानने के लिए द्रष्टा भाव का आह्वान किया जाना चाहिए।

स्मृतियाँ ही वे उत्प्रेरक हैं जो चित्त की तरंगों को ऊपर उठाती हैं, और चित्त में जो कुछ भी समाहित है, वह आपके 'मैं' के भाव के साथ पहचाना जाता है। अगर कोई चीज 'मैं' के साथ पहचानी नहीं जाती है तो वह चित्त का हिस्सा नहीं है। यौगिक दृष्टिकोण से 'मैं' के भाव अर्थात् अहंकार को मिटाया नहीं जाता है, बल्कि रूपांतरित किया जाता है।

'मैं' के कई रूप

अहंकार की तीन अभिव्यक्तियाँ हैं – तामसिक, राजसिक और सात्त्विक। तामसिक अहंकार की कुछ श्रेणियाँ हैं। पहला है भ्रष्ट अहंकार, जहाँ व्यक्ति स्वनिर्मित दु:खों के कारण दु:खी होता है। आप इसलिए दु:ख भोगते हैं क्योंकि आप अपने भीतर दु:ख पैदा कर रहे हैं। आप किसी को मुस्कुराते देखते हैं और आप सवाल करने लगते हैं, 'वह व्यक्ति क्यों मुस्कुरा रहा है? मैंने क्या किया है? क्या मेरे चेहरे में कुछ गड़बड़ है? क्या मेरे वस्त्रों में कुछ गड़बड़ी है?' मुस्कुराहट का कारण जाने बिना, आप अपने और दूसरे व्यक्ति के बारे में एक राय बना रहे हैं, और फिर यह आपकी चिंता और बेचैनी का कारण बन जाती है। यही भ्रष्ट अहंकार है। आप अपने मन में कुछ ऐसा बना देते हैं जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है और उसके कारण आप दु:ख भोगते हैं।

अहंकार का दूसरा रूप है दोषारोपी अहंकार। या तो आप दूसरों के दु:ख के लिए खुद को, या फिर अपने दु:ख के लिए दूसरों को दोषी ठहराते हैं। दोष का आरोप लगाना आपकी स्वाभाविक अभिव्यक्ति बन जाती है। लोग लगातार दुनिया को दोषी ठहराते रहते हैं, नगर निगम के सफाई कर्मचारी से लेकर देश के राष्ट्रपति तक। आप अपने जीवन के लिए हर किसी को दोषी ठहराते जाते हैं – 'उस व्यक्ति, उस परिस्थिति के कारण, मैं ऐसा या वैसा हूँ।'

ये दो तामसिक अहंकार हैं। फिर हम राजसिक अहंकार पर आते हैं। इसमें पहली श्रेणी प्रेरित अहंकार है। अगर कोई आपको उत्साहित करता है तो आप कहते हैं, 'ठीक है, मैं दुनिया का सामना करने के लिए तैयार हूँ।' यह प्रेरित अहंकार है, किसी को आपको वह प्रेरणा देनी पड़ी है। इस प्रेरित अहंकार में तामसिक अहंकार की तुलना में अधिक परिपक्वता, धैर्य, ज्ञान और प्रेरणा होती है। यहाँ कोई ठहराव नहीं है।

अहंकार का चौथा रूप शांत अहंकार है। यह भी राजसिक है, लेकिन व्यक्ति की आत्म-भावना अब वैसी नहीं रही जैसी पहले हुआ करती थी। आप अब अपनी जरूरतों और मांगों के केंद्र नहीं हैं, आप संतुष्ट होकर उच्च चेतना में रहते हैं। आपका अस्तित्व शांतिपूर्ण है, फिर भी यह तामसिक अहंकार से बाहर आने के प्रयास को दर्शाता है, और इसीलिए यह रजस् की श्रेणी में आता है।

फिर हम सात्त्विक अहंकार के आयाम में आते हैं, जहाँ एक स्थिर स्थिति प्राप्त हो जाती है। यहाँ पहला है प्रसन्न अहंकार, जहाँ व्यक्ति ईश्वर के साथ एकता महसूस करता है और आनंद की स्थिति में रहता है। व्यक्ति हर समय खुश रहता है, चाहे जीवन में कितनी भी समस्याएँ और चुनौतियाँ क्यों न हों।

अगला रूप है सुखद अहंकार। अब व्यक्ति मानवता के लिए रोशनी बन जाता है। ऐसे स्वभाव और व्यक्तित्व के संपर्क में आने पर हर कोई प्रसन्न होता है। उनकी उपस्थिति में हर कोई प्रेरित, प्रोत्साहित, शांतिपूर्ण और आनंदित महसूस करता है। वे सभी को खुश करते हैं। अहंकार का अंतिम और सातवाँ रूप निर्मल अहंकार है, जहाँ आप पूर्ण मानव बन जाते हैं।

ये सभी अहंकार के अलग-अलग रूप हैं। सूफी मत में 'नफ्स' के नाम से इसका उल्लेख किया गया है, वहाँ भी सात प्रकार के नफ्स या अहंकार की चर्चा आती है।

अहंकार का रूप स्वयं के साथ आपके भावनात्मक संबंध को दर्शाता है, बौद्धिक संबंध को नहीं। तामसिक अहंकार हमेशा प्रतिक्रियाशील होता है। राजसिक अहंकार हमेशा हावी रहता है। सात्त्विक अहंकार हमेशा खुशी, आनंद और ज्ञान बाँटता है। तामसिक अहंकार से उत्पन्न होने वाली भावनाएँ नकारात्मक होती हैं, जैसे क्रोध, निराशा, घृणा, ईर्ष्या और अपमान। जो कुछ भी अच्छाई के विरुद्ध है वह तामसिक श्रेणी में आता है। दूसरे छोर पर सात्त्विक अहंकार है जहाँ भावनाएँ शुद्ध होती हैं और आपको पूर्ण मनुष्य के रूप में पहचाना जाता है।

अहंकार प्रबंधन के तरीके

एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अहंकार और चित्त को निर्देशित करने वाली मनोदशाओं की शुद्धि हो सकती है। उस प्रक्रिया को भाव-शुद्धि कहा जाता है। इसमें आप अपने तामसिक या राजसिक पहलुओं से नहीं जुड़ते, बल्कि आप सकारात्मकता का आरोपण करने के लिए दृढ़ और सचेत प्रयास करते हैं।

अगर आपको जमीन का एक टुकड़ा मिलता है तो आप उसे कैसे सुंदर बनाएँगे? जमीन को साफ करके या फूल लगाकर? आप जमीन को साफ कर सकते हैं, पर इससे वह सुंदर नहीं बनेगी। जब आप फूलों के बीज बोते हैं और उन बीजों से पनपे पौधों की देखभाल करते हैं, तब पूरी जमीन रंगीन और सुंदर दिखाई देगी। आप जो बोते हैं, वह एक अतिरिक्त कारक है, जो उस जमीन में उपलब्ध नहीं था। आपको बीज खरीदकर वहाँ बोना पड़ा।

एक व्यक्ति की कहानी आती है जिसने बंजर जमीन का एक टुकड़ा खरीदा। अपनी मेहनत से उसने उसे एक खूबसूरत फूलों के बगीचे में बदल दिया जिसमें अद्भुत गुलाब, सूरजमुखी और अन्य फूल उग आए। यह इतना सुंदर, रंगीन और सुगंधित था कि लोग इसे देखने के लिए दूर-दूर से आते थे। एक दिन एक पादरी वहाँ आया और बगीचे में घूमने लगा। सभी फूलों के रंगों और सुंदरता की प्रशंसा करते हुए वह खुद को रोक नहीं सका और बोला, 'भगवान की रचना को देखो! कितना सुंदर बगीचा है! दुनिया ने ऐसी सुंदरता पहले कभी नहीं देखी। भगवान की रचना वाकई अद्भुत है!' यह सुनकर बगीचे का मालिक आगबबूला हो गया। उसने कहा, 'तुम्हारा क्या मतलब कि यह भगवान की रचना है? तुम्हें इस जमीन के टुकड़े को तब देखना चाहिए था जब भगवान इसके मालिक थे! यहाँ काँटों और कंकड़ों के अलावा कुछ भी नहीं उगता था। यह मेरी मेहनत है, भगवान की मेहनत नहीं।'

अपने तामसिक जीवन के बंजर बगीचे में क्या आप सत्त्व के बीज बो सकते हैं, जो समय के साथ सुंदर फूलों के रूप में खिलेंगे? जब आप बीज

बोते हैं, तो वह तुरंत नहीं उगता। आपको उसकी देखभाल करनी होती है, उसे जंगली जानवरों से बचाना होता है। यही सबसे मुश्किल काम है।

सकारात्मक बीज बोने के लिए भक्तियोग की आवश्यकता होती है। भक्तियोग पूजा-आराधना का योग नहीं है, यह अहंकार-प्रबंधन का योग है। भावना-प्रबंधन का नहीं, क्योंकि अगर अहंकार का प्रबंधन हो जाता है, तो भावना का प्रबंधन भी स्वाभाविक रूप से हो जाता है।

अहंकार का प्रबंधन कई तरीकों का उपयोग करके किया जाता है। यह एक ध्यानात्मक अभ्यास के माध्यम से किया जा सकता है, जहाँ आप अपनी भावनाओं का अवलोकन करते हैं। भक्तियोग का ध्यानात्मक अभ्यास अंतर्दर्शन है, यह भी प्रत्याहार का ही हिस्सा है। जिस तरह आप अंतर्मौन में अपने विचारों का निरीक्षण करते हैं, उसी तरह अंतर्दर्शन में आप अपनी भावनाओं और मनोदशाओं का निरीक्षण करते हैं और उन्हें बदलते हैं।

एक और तरीका है मंत्र, जो मन को एकाग्र करने का एक शक्तिशाली माध्यम है। मंत्र एक स्पंदन है। जब आप इसे अपने मन में जपते हैं तो यह एक सूक्ष्म स्पंदन पैदा करता है; जब आप इसे जोर से जपते हैं, तो यह एक स्थूल कंपन पैदा करता है। आप मंत्र को लिख भी सकते हैं। लिखित जप भी अजपा जप की तरह भक्तियोग का एक अभ्यास है। हालाँकि यह राजयोग के प्रत्याहार का भी अंग है, यह आपको चित्त से जोड़ता है। ध्यान की वैदिक प्रणाली में मुख्य अभ्यास अजपा जप है। सांसों का अवलोकन करना और उसके साथ 'सो हम्' मंत्र दोहराना वैदिक ध्यान का मुख्य स्वरूप है।

कीर्तन भी मंत्र साधना है। कीर्तन करने से शरीर के सभी परमाणुओं को पुनः व्यवस्थित किया जा सकता है। कीर्तन की विद्या में सिद्ध पुरुष मृतकों को भी जीवित कर सकते हैं। चैतन्य महाप्रभु जैसे सिद्ध पुरुषों की कहानियाँ आती हैं। कोई व्यक्ति मर गया था और वे वहाँ *'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* कीर्तन गाते हुए गए। उन्होंने मृतक के सिर पर हाथ रखा और कीर्तन गाते रहे। लगभग आधे घंटे बाद वह व्यक्ति भी कीर्तन गाता हुआ उठ खड़ा हुआ। यह झूठ है या सच, हम नहीं जानते, लेकिन ऐसी कहानियाँ सामने लाने के लिए कुछ तो हुआ होगा। जब मंत्र की शक्ति जागृत होती है, तो यह अहंकार को नियंत्रित और परिष्कृत करने का, तामसिक अहंकार को सात्त्विक अहंकार में बदलने का एक कारगर साधन बन जाता है।

– 14 दिसम्बर 2017, गंगा दर्शन

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान SB Collect Online Donation Facility के माध्यम से इस **QR code** को स्कैन करके दिया जा सकता है।

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र 6 – भावशुद्धि और तितिक्षा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 66, ISBN: 978-93-48677-08-2

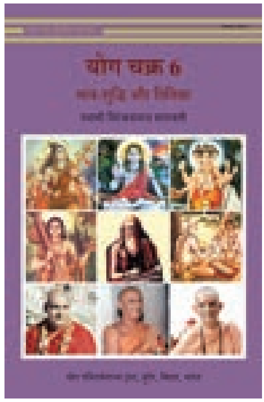

नया प्रकाशन

इन सत्संगों में स्वामीजी ने जीवनशैली सम्बन्धी यम-नियम के एक और समूह पर प्रकाश डाला – भाव-शुद्धि और तितिक्षा। उन्होंने इन्हें केवल बौद्धिक सिद्धान्तों के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि एक ऐसा मानचित्र प्रस्तुत किया जिसके जरिए इन सद्गुणों को जीवन में सही मायने में अनुभव और अभिव्यक्त किया जा सकता है। उन्होंने सभी के लिए गहन और स्थायी बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया जो व्यक्तिगत स्तर पर संतोष और सामूहिक स्तर पर सामंजस्य की ओर ले जाता है।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जून 23–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें